श्री राम उवाच–39

बिन श्रद्धा सब सून

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

बिन श्रद्धा सब सून

संस्करण प्रथम, जनवरी, 2024
4000 प्रतियाँ

मूल्य ₹ 125/-

प्रकाशक **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

आई.एस.बी.एन. 978-93-91137-85-4

मुद्रक **उपकार प्रिंट हाऊस** प्रा. लिमिटेड, आगरा

श्रद्धा जीवन का सूरज है

सामान्यत: व्यक्ति का जीवन परेशानियों से भरा होता है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसे अपने जीवन में कभी किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा हो। अधिकांश लोग परेशानियों के लिए दूसरों पर दोषारोपण करके हार मान लेते हैं तो कुछ लोग उसके चक्रव्यूह को भेदकर बाहर निकल जाते हैं। न सिर्फ बाहर निकलते हैं बल्कि सफलता के उच्चतम शिखर तक पहुँच जाते हैं।

उच्चतम शिखर तक पहुँचने वाले भी उन्हीं तत्त्वों से बने होते हैं जिन तत्त्वों से बने होते हैं हार मानने वाले। बस एक छोटा-सा अंतर दोनों के जीवन में बड़ा फर्क लाने का कारण बन जाता है। वह अंतर है श्रद्धा का। श्रद्धाहीन या कमजोर श्रद्धा वाले को हवा का हलका सा झोंका भी तोड़ देता है, तो श्रद्धावान या मजबूत श्रद्धा वाले को तूफान भी नहीं रोक पाते। श्रद्धावान सारी तकलीफों एवं परेशानियों के चक्रव्यूह को भेदकर सफलता के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाते हैं। श्रद्धावान व्यक्ति की सफलता को श्रद्धाहीन लोग दैवीय चमत्कार मान लेते हैं, जबकि वह उस व्यक्ति की श्रद्धा व आस्था का चमत्कार होता है। श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान संपन्न और चरित्र संपन्न बनता है। श्रद्धा जीवन का सूरज है। श्रद्धा का सूरज उगता है तो संदेह, अविश्वास, भय और पश्चाताप रूपी अंधकार दूर हो जाते हैं।

श्रद्धा का पहला आलंबन है गुरु या आचार्य। लोकभाषा में माता-पिता व अध्यापक को भी गुरु कहा जाता है। गुरु का तात्पर्य उस महापुरुष से है जो कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं, आत्मोपलब्धि का रास्ता दिखाते हैं। जीवन की सफलता का एक बहुत बड़ा निमित्त है अच्छे गुरु का मार्गदर्शन।

यह हम सबका सौभाग्य है कि हमें आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. के रूप में ऐसे गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त करने का अवसर मिला है, जो समाज को कल्याण का मार्ग दिखा रहे हैं। आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. अपने प्रवचनों एवं जीवन के माध्यम से सत्य-असत्य से परिचित कराकर, सही राह पर जाने के लिए सबको प्रेरित करते हैं। आचार्यश्री अपने प्रवचनों में

फरमाते हैं कि श्रद्धा के बिना धर्म नहीं हो सकता। धर्म का अर्थ है प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा और सौहार्द का भाव। धर्म का अर्थ है संयम का विकास। धर्म का अर्थ है आत्मा के प्रति आस्था। इन सबसे स्पष्ट है कि श्रद्धा ही सबका मूल है। सफल जीवन की शर्त है श्रद्धा। इसके बिना सब सूना है।

लोग श्रद्धा के महत्त्व को समझें, सबका जीवन श्रद्धा से भरा हो, सबके जीवन में श्रद्धा का सूर्योदय हो, इसके लिए साधुमार्गी पब्लिकेशन आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. के प्रवचनों की एक पुस्तक '**बिन श्रद्धा सब सून**' के नाम से प्रकाशित कर रहा है। '**बिन श्रद्धा सब सून**' एक अवसर है जीवन में श्रद्धा का सूर्योदय होने का। जिसके जीवन में श्रद्धा का सूर्योदय होगा, उसके आसपास से संदेह, अविश्वास, भय और पश्चाताप रूपी अंधकार दूर हो जाएंगे। इस अवसर का सदुपयोग करनेवाले आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ेंगे। सफलता की सीढ़ी चढ़ेंगे।

'**बिन श्रद्धा सब सून**' नीमच चातुर्मास में फरमाए गए प्रवचनों की चौथी पुस्तक है। पूर्व की भाँति इसमें भी गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गई हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बताएं, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को पुस्तक '**बिन श्रद्धा सब सून**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अंतर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

स्व.श्री सोहनलाल जी कटारिया की स्मृति में
श्रीमती सुंदर देवी कटारिया की प्रेरणा से
शांता देवी-प्रवीण कटारिया
कामना-विकास कटारिया, सपना-विनय कटारिया
मैसूर (बेमाली)

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	बन जाऊँ मैं अपना नाथ	07
2.	शुद्ध दयामय धर्म	16
3.	गुरु चरण मिले शुभयोगे	27
4.	तन को नश्वर जान	38
5.	साधना का दुरुपयोग न हो	51
6.	मूर्ख मन भमता रहे	63
7.	विषय बने तब विष की बेल	75
8.	तप संयम के लड्डू खाए जा	86
9.	सुविधा से सुरक्षा भली	98
10.	पाप की आग से बचें	111
11.	सरस जीवन की पहचान	123
12.	अब न खाना हमको धक्का	134
13.	पुद्गल नहीं लुभाए मन को	144
14.	विवेक प्रज्ञा जगे हमारी	154
15.	तप बड़ो रे संसार में	165
16.	अवसर अनमोलो	172

1

बन जाऊँ मैं अपना नाथ

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म श्रद्धा को हृदय में धारण करने की बात बताई गई है। धर्मनाथ भगवान की स्तुति करते हुए भी धर्म के महत्त्व को निरूपित किया गया है। दो बातें बताई गई हैं कि धर्म का नाम लेने वाले बहुत हैं, धर्म क्रिया करनेवाले बहुत हैं, किंतु धर्म के मर्म को जाननेवाले बहुत कम हैं। जितने लोग धर्म का नाम लेते हैं, उतने लोग धर्मक्रियाएं नहीं करते हैं। जितने लोग धर्मक्रियाएं करते हैं, उतने लोग धर्म के मर्म को जाननेवाले नहीं होते हैं। विरले ही धर्म के मर्म को जानते हैं। जब धर्म के मर्म को जान लेते हैं तो बात हृदय में उतर जाती है। तब एक चमत्कार घटता है। यथा–

'धर्म जिनेश्वर चरण ग्रह्यां पछी, कोई न बांधे हो कर्म, जिनेश्वर'

यह बात जानने–समझने लायक है कि धर्म जब हृदय में उतर जाता है तो जीव किसी कर्म का बंध नहीं करता। सैद्धान्तिक दृष्टि से देखें तो कर्मों का बंध दसवें गुणस्थान तक होता रहता है। ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थान में भी एक सातावेदनीय कर्म का बंध होता है। वह बंध, बंध की श्रेणी में नहीं है। कर्म पहले समय में आत्मा से लगा, दूसरे समय में वेदन और तीसरे समय में उसकी निर्जरा हो जाती है। समय कितना सूक्ष्म है, यह हम जानते होंगे। पलक झपकने भर में असंख्येय समय व्यतीत हो जाता है।

इस प्रकार ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थान में होने वाले बंध

को बंध रूप नहीं माना गया, फिर भी एकदम से निर्बंध अवस्था नहीं है। चौदहवां गुणस्थान निर्बंध है, जहाँ कर्मों का बंध नहीं होता है। आठवें, नौवें व दसवें गुण स्थान में जो बंध होता है, वह भी बहुत हलके रूप में होता है। सबसे घनीभूत मिथ्यात्व मोहकर्म है। उसकी मौजूदगी में घनीभूत कर्मों का बंध होता रहता है। मिथ्यात्व मोह सबसे भयंकर दुख देने वाला है, किंतु मिथ्यात्व हट जाए और शुद्ध समकित की प्राप्ति हो जाए तो उस जीव को उतने घने कर्मों का बंध नहीं होता। यदि क्षायिक समकित प्राप्त हो जाए, उसके पहले यदि आयुष्य बंध नहीं किया हो तो उसी भव में जीव मोक्ष चला जाएगा।

एक खंभे से डोरी बँधी हुई है। उसी डोरी से आगे पशु बँधा हुआ है, चाहे भैंस हो गाय, बँधी हुई है। खंभे से डोरी टूट गई, खुल गई। अब पशु बँधा हुआ है या खुला हुआ है?

(श्रोतागण बोले- खुला हुआ है)

हम उसको बँधा हुआ नहीं मानेंगे, किंतु उसके गले में या सींग में डोरी अभी भी बँधी हुई है, पर वह खंभे से बँधा हुआ नहीं है। खूँटे से खुल जाने पर उसको घूमने-फिरने में रुकावट नहीं है। जब तक वह खूँटे से बँधा था, तब तक सीमित जगह में घूम सकता था, किंतु खूँटे से खुलते ही कहीं भी घूम सकता है। वैसे ही मिथ्यात्व की डोरी जब तक बँधी रहती है, तब तक हमारा बंधन गहरा बना रहता है। कूपमंडूक की भाँति हम चार गतियों में ही परिभ्रमण करते हैं। कभी नरक, कभी तिर्यंच, कभी देवगति में तो कभी मनुष्य गति। उसके आगे गति नहीं हो पाती, किंतु जैसे ही खूँटे से डोरी खुली, वैसे ही उसकी विकास यात्रा प्रारंभ हो जाती है। खूँटे से डोरी खुलने का मतलब है कि मिथ्यात्व हट गया। गले में पड़ी डोरी इतनी बाधक नहीं है, जितनी खूंटे से बँधी हुई बाधक थी। अब उतनी कठिनाई नहीं है। फिर भी अभी डोरी बँधी हुई है। जिस दिन डोरी खुल जाएगी, डोरी दूर हो जाएगी, उस दिन मुक्ति हो जाएगी।

चौदहवाँ गुणस्थान उस डोरी को दूर कर देता है और जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाता है। ये बातें हमने बहुत बार सुनी हैं, किंतु उसके लिए हमारा उपक्रम क्या हुआ, हमने उसकी तरफ कदम कितने बढ़ाए, उस पर हमने क्या विचार किया? क्या हमने कभी यह सोचा कि मेरा भी खंभे से छुटकारा हो

जाए! शायद अभी तक हमारा खंभे से छुटकारा नहीं हुआ हो, अभी भी हो सकता है हमने मिथ्यात्व को पकड़ रखा हो, हमने परिपूर्ण मिथ्यात्व को नहीं छोड़ा हो। संपूर्ण मिथ्यात्व को छोड़ दिया होता तो उसकी महिमा अलग ही होती।

मगध सम्राट श्रेणिक पहले सम्यक् को प्राप्त नहीं हुए थे। अनाथी मुनि के दर्शन किए, सम्यक् भाव जगा। मगध सम्राट श्रेणिक के मन में विचार आया कि इतना रूपवान शरीर, यह जवानी, यह देदीप्यमान चेहरा अभी दीक्षा क्यों ले ली!

कभी-कभी आपके मन में भी ऐसे विचार आए होंगे कि ये कितने रूपवान हैं, इतना देदीप्यमान है फिर भी दीक्षा क्यों ली! क्या कठिनाई थी!

नीतिकारों ने कहा है, जहाँ सुंदर आकृति होती है वहाँ गुणों का वास होता है। शरीर संपदा भी पुण्यवानी के योग से प्राप्त होती है और शरीर संपदा मिलती है तो वहाँ गुण भी मौजूद रहते हैं।

मगध सम्राट श्रेणिक को बहुत आश्चर्य हुआ कि ये रूप के भंडार, भरी जवानी में क्यों दीक्षित हो गए। उन्होंने अनाथी मुनि जी से पूछ लिया कि मुनिवर! आपने भरी जवानी में दीक्षा क्यों ले ली? घर-परिवार क्यों छोड़ा? मुनिराज ध्यान खुलने पर बोले, राजन! मैं अनाथ था। मगध सम्राट आश्चर्यचकित हो गए, वे विश्वास नहीं कर पाए। वे बोले, मुनिराज! मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि आप अनाथ थे। फिर भी यदि आप अनाथ रहे हों और अनाथता के कारण साधु बन गए हों तो आप मेरे साथ चलिए, मैं आपका नाथ बनूँगा। आपके लिए सारी सुंदर व्यवस्था करूंगा। आपको कोई कठिनाई नहीं आने दूँगा।

हम भी ऐसी बातें कर लेते हैं। हम भी अपना बड़प्पन जताने के लिए ऐसी बातें करते हैं कि मैं तुम्हारी सारी व्यवस्था करूंगा।

कब तक करोगे?

मगध सम्राट यह बात कह रहा है, किंतु हम विचार करें कि मगध सम्राट पहले जाएगा या अनाथी मुनि! कुछ पता नहीं कि पहले कौन जाएगा तो किस आधार पर कहना कि मैं तुम्हारी व्यवस्था करूंगा, फिर भी राजा ने कह ही दिया। अनाथी मुनि ने कहा, राजन! तुम स्वयं अनाथ हो, मेरे नाथ क्या

बनोगे। यह थोड़ी कठोर बात थी। एक सम्राट को अनाथ कहना इतना आसान नहीं था। मगध सम्राट को थोड़ी अनहोनी बात लगी फिर भी अपने आक्रोश को दबाकर बोले- मुनिराज! आपको असत्य का दोष नहीं लग जाए।

कोई संत आपके सामने कोई बात कह दे तो आप वापस बोल पाओगे क्या कि म.सा.! आपको असत्य का दोष न लग जाए। आप लोग बोल देंगे कि क्यों इनसे पंगा लें, ये तो माथा मुंडाए हुए हैं। इनको क्या लाज-शर्म। हम तो घर-गृहस्थी वाले हैं।

हमारे भीतर भी वैसी दृढ़ता होगी तो कहने में पीछे नहीं रहेंगे। मगध सम्राट ने कहा, मुनिराज! आपको असत्य का दोष न लग जाए। अनाथी मुनि ने कहा, राजन! मैंने आपको राजा भी कहा है। मैं जान रहा हूँ कि तुम राजा हो, किंतु राजा होने मात्र से कोई नाथ नहीं हो पाता। दुनिया का नाथ बनना आसान है, किंतु स्वयं का नाथ बनना उतना आसान नहीं है और जो स्वयं का नाथ बन जाता है उसके लिए कोई कमी नहीं रहती है। बड़े विस्तार से प्रसंग बना। मगध सम्राट श्रेणिक को मुनि ने बताया कि अनाथता क्या है। तुम्हारा अपने पर भी नियंत्रण नहीं है यही अनाथता है। जब तुम्हारा स्वयं पर नियंत्रण नहीं है अर्थात् तुम खुद दूसरों के वश में चल रहे हो तो तुम सनाथ कैसे हो सकते हो।

हमारा शरीर किसके आधार पर चल रहा है? अपने शरीर के लिए हमें कितने प्राणियों की घात करनी होती है? हमें अपने जीवन का निर्वाह करने के लिए हिंसा करनी होती है। एक दिन में कितनी हिंसा करनी पड़ जाती है। असंख्येय जीवों की हिंसा तो नियमा (निश्चित रूप से) समझ लें। यह घात तो नियमित हो रही है अधिक हो तो अनंत जीवों की घात भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में हम कैसे नाथ हो पाएंगे।

मैं हूँ जग में नाथ अनाथ, अनाथ को गले लगाए कौन।
गले लगाए कौन नाथ जी गले लगाए कौन।।

हे प्रभु! मैं अनाथ हूँ। इस जग में अनाथ को कौन गले लगाए। धनाढ्य व्यक्ति हो तो सब मिलने के लिए तैयार होते हैं। गुरुदेव फरमाया करते थे-

माया से माया मिले, कर-कर लंबे हाथ।
तुलसी हाय गरीब की, कोई न पूछे बात।।

परमात्मा ही हमारा कल्याण कर सकते हैं। उनकी शरण से ही हमारा कल्याण हो सकता है।

अनाथी मुनि ने मगध सम्राट श्रेणिक को विस्तार से उपदेश दिया कि अनाथता का स्वरूप क्या है। उन्होंने यह भी बताया कि मेरे पास किसी चीज की कमी नहीं थी। माता-पिता, परिवार सब कुछ था। धन-संपत्ति की कोई कमी नहीं थी, किंतु जिस समय आँखों में भयंकर वेदना हुई उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि मैं अनाथ हूँ, मैं असहाय हूँ। मगध सम्राट को उस समय सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। जैसे ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई उनके भीतर संवेग का भाव जगा कि मुझे भगवान महावीर के शीघ्र दर्शन करने हैं। मैंने बहुत समय ऐसे ही निकाल दिया। मैं धर्म-कर्म को महत्त्व नहीं देता था। यह सब ढकोसला समझ रहा था। जैन धर्म को बदनाम करने के लिए भी मगध सम्राट श्रेणिक ने कई कार्य किए थे। जैन धर्म पर उनकी श्रद्धा ही नहीं थी, उनको विश्वास ही नहीं था, किंतु जैसे ही श्रद्धा पैदा हुई, रथ चलानेवाले से कहते हैं, जल्दी से रथ चलाओ। मुझे जल्दी-से-जल्दी भगवान महावीर के चरणों में पहुँचना है।

यह लगन कुछ अद्भुत ही होती है। उस समय का मनोभाव कुछ अलग ही होता है। उस समय जो प्रीत लगी थी, वह अद्भुत थी।

प्रभु सुमिरन में सार, किश्ती पार लगे।
कर जन-जन से प्यार, किश्ती पार लगे।।

सम्यक्त्व भाव में परमात्मा का स्मरण ही नहीं होता, अपितु उसकी भावना बनती है कि मैं भी परमात्म स्वरूप का वरण करूँ। मैं भी आत्मा के सिद्ध स्वरूप को प्रकट करने में समर्थ बनूँ। यह भाव सम्यक्त्व का भाव है। ऐसे भाव मन में उमड़ते हैं तो महान कर्मों की निर्जरा होती है। हर वक्त ऐसे भाव पैदा नहीं होते, क्योंकि हर वक्त फूल भी नहीं खिलते, हर वक्त कलियाँ भी नहीं महकतीं और न हर वक्त कोयल ही कूक पाती है। जिस समय हमारा संवेग भाव जागता है उस समय मन मयूर नाच उठता है। कोयल की कूक हमारे भीतर से पैदा होती है और धन्य की अनुभूति होती है। मगध सम्राट श्रेणिक रथवाले से कह रहे थे कि जल्दी से चलाओ, मुझे भगवान महावीर के चरणों में पहुँचना है।

पहले भी उन्होंने भगवान महावीर के दर्शन किए होंगे, किंतु तब और

अब की प्रसन्नता में अंतर है। थोड़ी देर के लिए हम समझ लें कि जिस समय हमें जैन मुनि की चर्या मालूम नहीं थी, हम जैन मुनि को श्रद्धा से नहीं देखते थे। कभी रास्ते में मिले तो हाथ जोड़ लिया होगा, किंतु दृष्टि वह नहीं थी जो होनी चाहिए थी।

अंतगडसूत्र में हमने सुना कि देवकी महारानी के घर छह मुनि पधारे। उस समय उसने दर्शन किए। बाद में ज्ञात हुआ कि वे मुनि उसके ही पुत्र हैं। जानने के बाद दर्शन करने में और पहले दर्शन करने में कितना अंतर आया? क्या फर्क पड़ा?

श्रद्धा होने के बाद माता का रूप बन जाता है। माता यानी जन्म देने वाली। श्रद्धा यानी मुक्ति को जन्म देने वाली, मोक्ष को जन्म देने वाली। श्रद्धा, माँ से कम नहीं है। मगध सम्राट श्रेणिक ने हृदय में श्रद्धा धारण कर ली। मगध सम्राट श्रेणिक, महावीर भगवान के दर्शन करके धन्य-धन्य हो गए। कृत-कृत हो गए। वे भगवान के सदा भक्त बने रहे।

सुनंदा भी सम्यक् दृष्टि जीव थी। कठिनाइयों से घबराने वाली नहीं थी। कठिनाइयों का दिल से स्वागत करती थी और शांत भाव से उन कठिनाइयों को झेल पाने में समर्थ थी। एक ही बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है, वह है शांति। दुनिया उबल जाए, दुनिया में कितना ही भूचाल आ जाए, तूफान आ जाए, किंतु मुझे शांति बनाए रखनी है। केवल इतना-सा वाक्य जिसके जीवन में उतर जाए उसके सारे दुख-दर्द दूर हो जाएंगे।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
सोच पिता का बनता ऐसा, रखूँ अब क्यों दौलत पैसा,
करे सुनंदा नाम, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

बात बहुत दिनों से रुकी हुई थी। अब तक हमने सुना था कि सुनंदा को ज्ञात हुआ कि माता की तबीयत ठीक नहीं है, वह सीरियस है। वह सुरेश के साथ पीहर पहुँचती है, किंतु तब तक उसकी माता का स्वर्गवास हो चुका था। वह पिता को ढाढ़स बँधाती है। उसे स्वयं को भी आत्मलीन करने का प्रसंग बना। पिता ने विचार किया कि मेरी कोई और औलाद है नहीं, कोई संतान नहीं है। केवल एक सुनंदा है। मुझे अब जमीन-जायदाद, धन-दौलत से क्या

लेना-देना। अत: विचार किया कि जीते जी मुझे वसीयत कर देनी चाहिए।

उन्होंने सारी दौलत, चल-अचल संपत्ति जमीन-जायदाद का वसीयतनामा कर दिया। कुछ दिनों तक सुनंदा पीहर रही। जब विजय ससुराल आया तो सेठ ने वसीयतनामा विजय के हाथों में सौंप दी। पीहर में भी सुरेश की सेवा करते देखकर सुनंदा के पिता बड़े खुश हुए। उन्होंने सोचा, धन्य है मेरी लाडली। ऐसे दिव्यांग की भी यह कितने कालजी से सेवा कर रही है।

कुछ पिता नाखुश भी हो सकते हैं। उनकी सोच रह सकती है कि अपना समय इसके पीछे क्यों खराब करती है। एक नौकर रख दे, नौकर संभाल लेगा।

ध्यान रहे, नौकर, नौकर ही होता है। नौकर अपनत्व का संबंध नहीं जोड़ता। अपनत्व का संबंध जुड़ता है तो कुछ अलग ही बात होती है। जिन माता-पिता की सेवा नौकरों के भरोसे हो रही है, उनमें से बहुत-से माता-पिता ऐसा अनुभव करते हैं कि बेटे का मुँह देखना उनके लिए कठिन हो जाता है।

गुजरात की एक घटना सुनने में आई। एक लड़की की माता बीमार हो गई। न लड़की के पास धन की कमी थी और न ही माता के पास। गाँव वालों ने माता के बीमार हो जाने की सूचना लड़की को दी तो उसने कहा आप सेवा में कमी मत रखना। मैं आना चाहती हूँ, किंतु व्यस्त हूँ। उसकी माता का स्वर्गवास हो गया। गाँव वालों ने सूचना दी तो वह कहती है, बहुत अच्छी तरह से माता का दाह संस्कार करना। पैसों की कोई चिंता मत करना, खर्चे की चिंता मत करना। मेरी बहुत व्यस्तता है इसलिए आ नहीं पाऊँगी। यह व्यस्तता जीवन में कब तक रहेगी?

जब तक रहेगी जिंदगी, फुरसत नहीं है काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो, प्रेम कर लो राम से।।

कुछ समय निकालकर अपने आपसे प्रेम करो। अपने परिवार वालों के लिए समय निकालो, जिससे उनके मन को शांति मिले। कई बेटे कहते हैं कि मैं हर महीने पैसे भेजता रहता हूँ, पैसे से वह नहीं मिलता जो बुढ़ापे में चाहत होती है। हो सकता है कुछ बेटे या बाप पैसे में रचे-पचे हों, उनको पैसा

ही प्यारा हो पर आपके सामने यदि ऐसा प्रसंग आ जाए तो आप बेटे को पसंद करेंगे या पैसों को?

(श्रोतागण बोले- हम बेटे को पसंद करेंगे)

आप सोचेंगे, हे राम! ऐसा मौका ही मत देना। मौका भगवान देगा या आपके कर्म देंगे यह तो आप ही जानें। वैसे हर पिता की इच्छा रहती है कि बुढ़ापे में थोड़ी देर बेटा हमदर्दी की बात कर ले। सुख-साता पूछ ले। बेटा ऐसा कर लेता है तो पिता का मन हलका हो जाता है। उन्हें शांति मिल जाती है। किंतु आज के अधिकांश सपूत कहते हैं- पिता जी! मैं आपको हर महीने पैसा भेजता रहूँगा, पैसे उपलब्ध कराता रहूँगा। क्या करेगा पैसों से। मन तरस रहा है, आँखें तरस रही हैं बेटे को देखने के लिए।

सुनंदा द्वारा की जा रही सुरेश की सेवा को देखकर उसके पिता खुश हुए। कुछ समय बाद सुनंदा अपने पीहर से ससुराल पहुँच जाती है। यह हमने पहले ही जाना है कि विजय, सुरेश से सदा नाखुश रहा है। अब आगे क्या प्रसंग बनता है, क्या घटना घटती है, समय के साथ जान पाएंगे।

महासती श्री मल्लिकाश्री जी म.सा. की आज 45 की तपस्या है। कई संत-सतियों के पारणे हो गए। भाई-बहनों में भी कइयों के पारणे हुए और कइयों की तपस्या चल रही है। सरिता जी मुणोत की कल 54 की तपस्या थी। कल जब वे 54 के प्रत्याख्यान करने आईं तब बोलीं, म.सा.! पारणा करने का मन ही नहीं होता। अभी तो तपस्या चल रही है तो यहाँ आगे बैठकर व्याख्यान सुन लेती हूँ, बाद में मुझे आगे बैठकर कौन व्याख्यान सुनने देगा।

कौन मना करेगा? यह जगह खाली पड़ी है, भले कितने ही बैठो। संवत्सरी निकल गई, अब वापस यह जगह कब भरेगी! पारणे करने वालों को यह करना चाहिए कि वे अपनी जगह किसी दूसरे को बैठा दें ताकि तपस्या की जगह खाली नहीं रहे। आगे-से-आगे माला पहनाते रहें।

कल बहुत-से लोगों ने ऊपर आकर प्रत्याख्यान किए। मैंने कहा, नाम लिखवा दिया तो बोले अभी आगे करना है। मैंने कहा- एक बार नाम लिखा दो आगे करते रहना। नाम लिखा दोगे तो मालूम हो जाएगा कि इतनी अठाइयाँ हो गईं। कइयों ने 9, 11, 15, 21 के प्रत्याख्यान लिए।

किसकी कितनी तपस्या चल रही है यह बात समय के साथ मालूम पड़ेगी। तपस्या करनेवालों से प्रेरणा लें और अपने आपको जागृत करें। शुद्ध धर्म की श्रद्धा को अपने हृदय में स्थान दें। ऐसा करेंगे तो कल्याण होगा और धन्य-धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

23 अगस्त, 2023

साधुमार्गी पब्लिकेशन

2

शुद्ध दयामय धर्म

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म।
पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।।
'केवलिपण्णत्तो धम्मो'

तीर्थंकर भगवंतों द्वारा जो धर्म का निरूपण किया गया, वह शुद्ध दयामय धर्म है।

जिसमें दया की प्रधानता हो, जिसमें अहिंसा पर ही सारी बिल्डिंग खड़ी हो, ऐसा धर्म तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित किया गया है। तीर्थंकर भगवंतों को देव भी कहा गया है। देवाधिदेव भी कहा गया है।

देव किसे कहा जाता है?

'**दीव्यति इति देवः**' अर्थात् जो दिव्य होता है, उसे देव कहा जाता है। दिव्य का अर्थ है, जो चमकता है, जिससे प्रकाश प्रसरित होता है। देवताओं का शरीर प्रकाश विकीर्ण करनेवाला होता है। देवाधिदेव के शरीर से प्रकाश विकीर्ण हो ऐसा जरूरी नहीं है, किंतु उनकी आत्मा दिव्य बन चुकी होती है। उनके आत्मप्रदेशों में कहीं भी अंधकार का रूप नहीं रहता। वे सर्वत्र ज्ञानालोक से प्रकाशित होते हैं। जिनके ज्ञान में केवल लोक ही नहीं अलोक भी देखा जाता है, जाना जाता है। उनके ज्ञान में धर्म का जो स्वरूप प्रकट हुआ, वही उन्होंने हमें बताया। उन्होंने ज्ञान में जो देखा वही बताया। दशवैकालिक सूत्र में

हम सुनते हैं–

धम्मो मंगलमुक्कट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

भिन्न–भिन्न स्थानों पर धर्म के भिन्न–भिन्न प्रकार बताए गए हैं। श्री स्थानांग सूत्र में दस प्रकार का धर्म भी बताया गया है। यतियों के लिए भी दस प्रकार का धर्म कहा गया है। यतियों का मतलब, संत जीवन। साधु जिसकी आराधना करता है, वह धर्म दस प्रकार का है। जिसमें आराधना साधु को करनी होती है वह यति धर्म है। दूसरे शब्दों में जिसकी आराधना साधु करता है वह होता है यति धर्म। उसके दस भेद बताए गए हैं; क्षमा, मृदुता, सरलता, सहजता, आदि–आदि। ये यति धर्म के भेद हैं।

वर्तमान में यदि हम विचार करें तो ये धर्म किताबों की शोभा रह गए हैं, जीवन में बहुत कम मिल पाते हैं। ये धर्म जब जीवन में प्रकट नहीं हो पाते हैं तो इनसे जीवन को सराबोर होने की बात ही कहाँ रह जाती है। वैसी स्थिति में जो रसायन भीतर पैदा होना चाहिए, वह पैदा नहीं हो पाता।

भोजन परोसकर थाली सामने आ गई। थाली में बहुत चीजें परोसी गई हैं। आँखों से देखा जा रहा है। उठने वाली सुगंध को नाक से सूँघा जा रहा है, किंतु मुँह में निवाला नहीं गया तो स्वाद कहाँ से आएगा। थाली में बहुत सारे व्यंजन रखे गए हैं, किंतु निवाला मुँह में नहीं लिया तो उसका स्वाद नहीं आएगा। पता नहीं चलेगा कि उसका स्वाद कैसा है।

वही दशा हमारी समझ लीजिए। पुस्तकों में, ग्रंथों में, शास्त्रों में सारी सामग्रियाँ परोसी गई हैं, किंतु हम उसका निवाला मुँह में नहीं रख रहे हैं।

पूछा गया कि दुष्कर क्या है?

उत्तर मिला कि अपने स्वभाव को, अपनी आदत को बदलना बहुत दुष्कर है। आदत नहीं बदलेगी तो धर्म का स्वाद अनुभूत नहीं हो पाएगा। एक होता है भ्रमर और एक होता है गिंडोला। भ्रमर भी काला होता है और गिंडोला भी काला होता है। दोनों लगभग समान दिखते हैं। भ्रमर ऊपर उड़ता है और गिंडोला गोबर में पैदा होता है। गिंडोले का मुख्य खाना गोबर ही होता है। उसे अशुचि बड़ी प्रिय होती है। दोनों का रंग–रूप एकसमान है, शरीर मिलता–

जुलता है किंतु दोनों के व्यवहार में बहुत बड़ा अंतर है।

एक बार भ्रमर ने गिंडोले से कहा, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सुगंधित पराग दिलाऊँगा। गिंडोला उसके साथ गया। गिंडोला फूल पर जाकर बैठा तो सही पर उसे न तो मधुर स्वाद मिला और न ही सुगंध। स्वाद और सुगंध क्यों नहीं मिल पा रही थी उसको? क्योंकि वह अपने मुँह में अशुचि भरकर लाया था। जब तक मुँह से अशुचि हटेगी नहीं, तब तक स्वाद और सुगंध नहीं आएगी। तब तक फूलों का पराग नहीं मिलेगा।

हम अपने मन की बात को समझ लें। हमारे मन में भी ईर्ष्या, डाह, नफरत, द्वेष भरा हुआ है। बहुत कम लोग मिलेंगे जिनका मन नफरत से भरा हुआ नहीं हो।

एक परिवार में देवरानी और जेठानी रहती थीं। दोनों के एक-एक लड़का था। देवरानी का लड़का सुंदर था। हर किसी का मन उस पर आकर्षित हो जाता था। जेठानी के लड़के का रूप वैसा नहीं था। उसके रंग-रूप में थोड़ा फर्क था। स्वभाव में भी अंतर था। उसकी ओर सहसा किसी का ध्यान नहीं जाता था। देवरानी के लड़के को कोई भी गोद में ले लेता था। यह देखकर जेठानी का मन...

(श्रोतागण बोल उठे- ईर्ष्या से भर गया)

मेरे कहने से पहले ही आप लोग जान गए।

'डागलिये चढ़ देखो, घर-घर ओ ही लेखो'

छत पर जाकर देखेंगे तो हर घर में यह अवस्था मिल सकती है। प्राय: मिल जाती है। कोई घर बचा हुआ हो तो बात अलग है। उसके लिए कह सकते हैं कि उसे परमात्मा का प्रसाद मिला हुआ है, जिससे उसके घर में ईर्ष्या नहीं है, नफरत नहीं है, डाह-द्वेष नहीं है।

जेठानी ने देवरानी के लड़के को मरवा दिया। आपको बड़ा कठिन कार्य लग रहा है, किंतु ईर्ष्या वहाँ तक पहुँच जाती है। यह सामान्य बात है। नफरत, आदमी को वहाँ तक ले जा सकती है। व्यक्ति सोचता है कि मैं भले ही सातवीं नरक में चला जाऊँ, किंतु सामने वाले को छोड़ूँगा नहीं। इसके भयंकर परिणाम होते हैं, पर व्यक्ति समझ नहीं पाता।

गजसुकुमाल मुनि के सिर पर अंगारे रखे जाने की घटना आपने सुनी होगी। वह ईर्ष्या का परिणाम था। ईर्ष्या दिल के भीतर छिपी रहती है। उसको देख पाना हर किसी के बूते की बात नहीं है। जिसका मन ईर्ष्या से भरा हुआ है उसको तो ईर्ष्या नजर आएगी ही नहीं। काला चश्मा लगाने वाले को सारी दुनिया काली ही नजर आएगी। सही नजर आएगी ही नहीं।

संयोग ऐसा बना कि सप्ताह-दस दिन में ही जेठानी का देहावसान हो गया। क्या पाया उसने? छोटी सी उम्र में, छोटी सी जिंदगानी में लोग कैसे-कैसे कलंकित कार्य कर लेते हैं। वर्तमान में किसी की आयु कितनी होगी? ज्यादा-से-ज्यादा सौ वर्ष होगी। उससे भी ज्यादा हो तो सवा सौ वर्ष मान लें।

भगवान ऋषभदेव की आयु कितनी थी?

(श्रोतागण बोले- 84 लाख पूर्व वर्ष थी)

कहाँ 84 लाख पूर्व वर्ष और कहाँ सौ वर्ष। 84 लाख पूर्व वर्ष की आयु के सामने 100 वर्ष, ऊँट के मुँह में जीरा के समान है। बताओ, निकालने वालों ने 84 लाख पूर्व वर्ष कैसे निकाले होंगे। हम 100 वर्ष शांति से नहीं निकाल पाते। पता नहीं कितनी बार आदमी आत्महत्या की बात सोच लेता होगा। कितनी बार घर से भाग जाने की सोच लेता होगा। पैरों में साँकल बँधी हुई होती है, इसलिए वह भाग नहीं पाता। सोचता है कि मेरी प्रतिष्ठा का क्या होगा! मेरे बारे में लोग क्या सोचेंगे! ऐसे बहुत से कारणों से वह भाग नहीं पाता है, पर कहाँ-से-कहाँ घूमकर मन में कल्पना आ जाती है।

जेठानी चली गई, उसका लड़का रह गया। अब देवरानी को क्या करना चाहिए? सुझाव तो आप बहुत सुंदर देंगे। राय देने में आप बहुत माहिर हैं, पर जो राय दूसरों को देते हैं, उस पर स्वयं कितना अमल करते हैं यह समझने की बात है।

हड़बड़ हड़बड़ होठ चाले, ऊँट चरे ज्यों पालो।
औरां ने उपदेश देये, घर को ठीकर खालो।।

दूसरों को उपदेश देते हैं और अपने भीतर का ठीकरा खाली पड़ा है। खाली बरतन बजते बहुत हैं। कहते हैं, 'थोथा चना बाजे घना।' हम लोगों की भी हालत यही है। '**पर उपदेश कुशल बहुतेरे**' अर्थात् दूसरों को उपदेश देना

बहुत आसान काम है। दूसरों को राय देना बहुत आसान काम है, किंतु उस राय को अपने जीवन में उतार लेना बहुत कठिन होता है।

अभी जेठानी-देवरानी की बात कह रहा था। देवरानी धर्म श्रद्धा से संपन्न थी। तीर्थंकर भगवान की पर्युपासना करने वाली थी। साधु-संतों की सेवा-भक्ति करने वाली थी। उसमें धर्म की समझ थी। उसने जेठानी के लड़के को इतना प्रेम दिया कि वह अपनी माँ को भूल गया। देवरानी भी बदला ले सकती थी, उसके साथ वैसा ही बर्ताव कर सकती थी, अच्छा खाना नहीं देती, उससे कसकर काम करवाती, किंतु उसने ऐसा नहीं किया। उसने नारी का सच्चा रूप प्रदर्शित किया।

नारी के लिए बताया गया है-

नारी का तू कर सम्मान, नारी उत्तम नर की खान।
नारी को मत भोग्या जान, नारी में है सकल जहान।।

बहुत बढ़िया बात कही गई है कि नारी का सम्मान होना चाहिए। नारी उत्तम नर की खान है।

गोलकुंडा कहाँ पर है?

(गौतम जी बोले- हैदराबाद के पास है)

गौतम जी बोल गए क्या?

गोलकुंडा की महत्ता है कि वहाँ रत्नों की खदान निकली। वहीं से श्रेष्ठ रत्न निकले। छोटा गाँव होते हुए भी उत्तम रत्नों के कारण प्रसिद्ध हो गया। हम उत्तम हैं या अधम?

(श्रोतागण बोले- हम उत्तम हैं)

हम कौन-सी खदान से निकले?

'नारी का तू कर सम्मान, नारी उत्तम नर की खान'

नारी से ही नर की पैदाइश होती है। उत्तम मनुष्य की पैदाइश नारी से ही हुई है। कई लोग नारी को भोग्या मान लेते हैं। नारी को भोग्या मत समझो। उसी में सकल जहान है। सारा संसार, सारी दुनिया, पूरी सृष्टि उसी में है।

नारी का तू कर सम्मान, नारी उत्तम नर की खान।
जो करता नारी सम्मान, उस घर उतरे देव विमान।।

क्या सुंदर बात कही गई है। जिस घर में नारी का सम्मान होता है, उस घर में देव विमान उतरते हैं। मतलब, देवों का आगमन होता है। एक श्लोक में कहा गया है–

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'

अर्थात् जिस घर में नारी की पूजा होती है उस घर में देवता का वास होता है। वैदिक संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु, महेश का नाम आता है। वे कहाँ उतर गए? बालकों का रूप बनाकर अहिल्या के वहाँ उतर गए।

'लक्ष्मी का मिलता अवदान'

जिन घरों में नारी की पूजा होती है, नारी का मान-सम्मान होता है, वहाँ लक्ष्मी का वरदान मिलता है। जहाँ रोज खट-पट होती है, वहाँ लक्ष्मी रहना पसंद नहीं करतीं। उसके आगे बात बताई गई है–

नारी को मत आरी जान, नारी कर अपनी पहचान।
क्यों करती अपना अपमान, मत बन आरी सम नादान।।

सब लोग कॉपी-कागज निकालो और नारी लिखो। अब इसका संधि-विच्छेद करो। न+आरी = नारी। जो काटने का काम करती है वह है आरी।

'मत बन आरी सम नादान'

नारी को शिक्षा दी जा रही है कि तू आरी के समान मत बन। आरी के समान बनोगी तो तुम्हारा अपमान होगा। जो सम्मान होना चाहिए, वह नहीं हो पाएगा। और तो और तुम स्वयं अपना अपमान करने वाली हो जाओगी। यदि नारी का अपमान हो रहा है तो उसका मतलब है कि वह आरी का काम कर रही है। वह स्वयं ही नारी समाज का अपमान करने वाली बन रही है।

नारी को मत आरी जान, नारी कर अपनी पहचान।
क्यों करती अपना अपमान, मत बन आरी सम नादान।।

घर को बनाने वाली नारी होती है और घर को बिगाड़ने वाली भी नारी होती है।

पहले चमड़े के जूते हुआ करते थे। उन जूतों को पहनकर चलने पर शुरू-शुरू में एड़ी कटती थी। जूता काटता भी है और रक्षा भी करता है।

समझदार लोग चमड़े के जूतों को तेल पिला देते थे। तेल का दूसरा नाम है स्नेह। जूतों को स्नेह पिला देते थे ताकि जूते काटें नहीं। नए-नए जूते काटते थे, किंतु तेल से पगा होने पर काटते नहीं थे। वैसे ही नारी घर को बिगाड़ने वाली भी होती है और सुधारने वाली भी।

एक बार एक सेठ-सेठानी में खींचतान हो गई कि घर किसकी समझ से चलता है। सेठानी ने कहा, नारी घर की शोभा होती है। नारी के बिना घर, घर नहीं होता। वही घर की देखरेख करने वाली होती है। वह चाहे तो घर की इज्जत उड़ा भी सकती है और बचा भी सकती है। सेठ ने कहा, ऐसी बात नहीं है। सेठानी ने कहा, टाइम पर बता दूंगी कि क्या होता है और क्या नहीं।

सेठ बड़ा संपन्न था। राज सम्मान प्राप्त पुरुष था। राजा के दरबार में उसे एक स्थान मिला हुआ था। एक दिन सेठ के दोनों लड़के दरबार में पहुँचे। मुँह से राफें निकली हुई थी, कपड़े अस्त-व्यस्त थे। बटन उलटे-पुलटे लगे थे। वे एक छोटी केतली लेकर आए और बोले, पिताजी हमें राबड़ी बाँट दो। दरबार में रहे हुए सारे लोगों का ध्यान उधर चला गया। लोग खुसर-फुसर करने लगे, अरे! इतने बड़े सेठ के बच्चे राबड़ी के बँटवारे की बात कर रहे हैं!

अब तो लोगों के नसीब में राबड़ी भी कहाँ रह गई। सेठ को गुस्सा आया, वह अपने बच्चों को बाहर ले जाने लगा तो लोगों ने मजाक उड़ाते हुए कहा, सेठ जी! बाहर क्या जाना, राबड़ी यहीं पर बाँट दो।

इस घटना से सेठ बहुत लज्जित हुआ। वह घर आया और सेठानी से कहा, यह तुमने क्या किया। ऐसा क्यों किया। सेठानी ने कहा, मैंने आपको पहले ही बोला था कि इज्जत बचाना और रखना नारी के हाथ में है। सेठ ने कहा कि तुमने इनको राजसभा में क्यों भेज दिया। मेरी इज्जत के काँकरे हो गए। सेठानी ने कहा, सेठ साहब! आप चिंता मत करो, विचार मत करो। जो नारी इज्जत मिटा सकती है, वह इज्जत बना भी सकती है।

दो-चार दिन बाद सेठानी ने दोनों बच्चों को अच्छे कपड़े पहनाकर राजदरबार में भेज दिया। बच्चे वही केतली लिए हुए थे। वे कहने लगे पिताजी, राबड़ी बाँट दो। सेठ को गुस्सा आया कि ये पुन: राबड़ी लेकर आ गए। लोगों ने मजाक में कहा, सेठ जी! बच्चे हैं, घर की बात है, गुस्सा क्यों करना, राबड़ी

बाँट दो। सेठ ने केतली का ढक्कन खोला तो केसर-इलायची आदि मिले हुए दूध की सुगंध आ रही थी। लोग कहने लगे, अरे! सेठ जी के घर ऐसी राबड़ी बनती है।

ऐसे में लोगों के बीच इज्जत बढ़ी या घटी?

(श्रोतागण बोले- इज्जत बढ़ी)

इसलिए इज्जत बचाना और हटाना नारी के हाथ की बात है।

'नारी तू आरी मत बन'

नारी, आरी बनेगी तो अपमान किसका होगा! कुदरत ने नारी नाम दिया। न को हटा दें तो आरी रह जाता है। नारी, अगर आरी बन जाएगी तो कौन उसका सम्मान करेगा!

पुरुषों में भी बात होती है कि मुझे महत्त्व नहीं मिला तो मैं घर, परिवार और समाज के टुकड़े-टुकड़े करके रख दूँगा। इस तरह सोचने से परिवार, समाज, घर में ईर्ष्या का बीज पनप जाता है। फिर परिवार-समाज की रक्षा होना बहुत मुश्किल है।

बात बता रहा था कि अरिहंत भगवान ने शुद्ध धर्म का रूप बताया है। देवरानी ने धर्म का पालन किया और नफरत का बदला प्यार से लिया। वह जान रही थी कि मेरा बेटा वापस आने वाला नहीं है। जेठानी के बच्चे का जीवन सही बने, इसलिए उसने उस पर पूरा ध्यान दिया। सुनंदा की स्थिति स्पष्ट है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
एक दिवस फिर विजय कहता, शांत नहीं मन मेरा रहता,
तुम ही हो ईलाज, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

विजय एक दिन सुनंदा से कहता है, प्रिय! मेरा मन अशांत रहता है। धन-संपत्ति की कोई कमी नहीं है। बाजार में, गाँव में बहुत इज्जत है। लोग बहुत सम्मान देते हैं, किंतु मेरा मन अशांत रहता है।

यहाँ पर किसका मन शांत है? मन अशांत क्यों रहता है?

मन की अशांति के अनेक कारण हैं। कारणों की खोज करने पर मेरी दृष्टि बार-बार एक जगह जाती है कि प्राय: व्यक्ति सोचता है कि मैं जैसा चाहता हूँ वैसा होना चाहिए। वैसा नहीं होने पर मन अशांत हो जाता है। यह

अशांति दूसरे के अधिगत है। अपने अधिगत जो है, उसकी सोच नहीं करते। सोचते हैं कि दूसरा वैसा होना चाहिए। इस तरह की सोच अशांत बनाती है।

विजय का मन भी इसलिए अशांत है क्योंकि सुनंदा उसकी बात को नहीं मान रही है। वैसे सारी बातें मान रही है, किंतु एक बात को लेकर प्राय: कुछ-न-कुछ खटपट होती है। विजय चाहता है कि मैं अपने दिव्यांग भाई सुरेश को अनाथालय में भरती करवा दूँ। उसको अपने पास से हटा दूँ। उसकी देख-रेख में सुनंदा का बहुत समय निकल जाता है। आखिर है तो उसका भी शरीर ही।

विजय ने नई चाल चली। उसने बड़े प्रेम से बात को आगे बढ़ाया। वह कहता है, सुनंदा! मेरे मन की शांति का उपाय तुम ही बताओ। वह कहती है, नाथ! मैं तो आपके चरणों की चेरी हूँ, आपकी सेवा में मेरा मन लगा रहता है। मैं आपको क्या निवेदन करूँ। उसने पूछा, अशांति का कारण क्या है? विजय बोला, देख! तू दिनभर काम में लगी रहती है। कभी मेरा काम करती है, कभी सुरेश का तो कभी घर का। तू दिनभर काम करती रहती है, विश्राम का तो नाम ही नहीं है। शरीर को विश्राम की भी जरूरत होती है और विश्राम का सबसे बड़ा रोड़ा सुरेश है। सुरेश के कारण तुम्हें विश्राम का मौका नहीं मिलता। उसकी सेवा करने में तुम्हारा बहुत समय चला जाता है।

विजय ने सुनंदा से कहा कि मैंने एक योजना बनाई है, जिससे साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। बस तुम्हारी हाँ की जरूरत है। तुम हाँ करो तो कार्य सफल हो जाएगा।

सुनंदा ने कहा, क्या योजना है, मैं भी तो सुनूँ।

विजय ने कहा, मैंने योजना बनाई है सुरेश को पागलखाने में भरती करवाने की। इसके लिए मैंने डॉक्टरों से बात कर ली है। थोड़ा धन देना पड़ेगा किंतु कोई बात नहीं। थोड़ा धन जाएगा तो जाएगा, किंतु बात मुट्ठी में रह जाएगी। इससे न तो हमारी निंदा होगी और न ही समाज में अपमान होगा। लोगों में चर्चा भी नहीं होगी। यह तेरे हित की बात है, हित की बात पर विचार करना चाहिए। तुम्हारा बहुत समय सेवा में जाया हो जाता है। तुम धर्माराधना नहीं कर पाती हो। सुरेश को पागलखाने में भरती करवा दिया तो तुम्हारे पास

बहुत समय बचेगा। तुम धर्माराधना कर पाओगी। इसमें नफा-नुकसान जो भी हो तुम समझ लो। जो लाभ का काम है वह करना चाहिए। सुरेश के कारण तुम धर्माराधना नहीं कर पा रही हो। वह यहाँ नहीं रहेगा तो तुम्हारे पास समय रहेगा। तुम ज्ञान-ध्यान, सामायिक, पौषध, स्वाध्याय कर सकोगी। धर्म की बहुविध आराधना कर सकोगी, इसलिए मैंने योजना बना ली है। अब बस, केवल तुम्हारी हाँ चाहिए। किसी को खबर नहीं पड़ेगी कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ।

विजय की योजना ईर्ष्या और द्वेष का परिणाम है। नफरत का परिणाम है। सुरेश ने विजय से कभी कुछ माँगा नहीं और न ही उसने कभी उसकी सेवा ही की, किंतु उसको ईर्ष्या हो रही है कि उसकी सेवा क्यों की जा रही है।

विजय की सेवा में कोई कमी नहीं रह रही है, किंतु सुरेश की सेवा होने से उसे ईर्ष्या हो रही थी। ईर्ष्या ही उसकी अशांति का कारण था। विजय चाहता था कि सुरेश को घर से हटा दूँ, किंतु सुनंदा उसको हटाना नहीं चाहती। सुनंदा ने माँजी को जुबान दी थी और उस जुबान पर कायम थी।

विजय ने पहला दाँव अनाथालय का खेला था पर उसके लिए सुनंदा तैयार नहीं हुई। विजय ने दूसरा दाँव चलाया सुरेश को पागलखाने में भरती कराने का। वह सुनंदा से मनवाने की कोशिश कर रहा था। वह जान रहा था कि मैं क्रोध में बात करूँगा तो बात बनेगी नहीं। प्रेम से, हमदर्दी से बात कहूँगा तो सुनंदा के गले उतर भी सकती है।

विजय की योजना पर सुनंदा का जो विचार बनता है, उस पर समय के साथ विचार करेंगे, किंतु अरिहंत भगवान द्वारा दिए गए शुद्ध दयामय धर्म की आरधना करने के लिए संक्षिप्त में बात करूँ तो अपने मन को पवित्र बना लें। अपने मन को कलुषता से दूर रखें। कलुषित मन धर्माराधना नहीं कर पाएगा। जैसे गिंडोले के मुँह में अशुचि भरा होने से फूल पर बैठने के बावजूद उसको पराग की सुगंध नहीं आ रही थी, वैसे ही हमारे मन में दूसरा विषय भरा रहेगा तो उसमें धर्म नहीं उतरेगा। धर्म हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगा। इसलिए धर्माराधना के पहले मन का शुद्धिकरण हो जाना चाहिए। मन शुद्ध हो जाएगा, पवित्र हो जाएगा तो धर्माराधना आराम से हो पाएगी। बिना कठिनाई

के हो पाएगी। उस धर्माराधना का सुंदर फल मिलेगा। सुरम्य फल मिलेगा। उसका स्वाद आएगा। तब जान पाएंगे कि सच्चा धर्म क्या होता है। ऐसी धर्माराधना के लिए अपनी तैयारी करनी चाहिए।

महासती श्री मल्लिका श्री जी म.सा. की आज 45 के पारणे की संभावना है। और भी कई तपस्याएं चल रही हैं। महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की आज 12 की तपस्या है। सरिता जी मुणोत की आज 56 की तपस्या चल रही है। और भी भाई-बहन ने अलग से पच्चक्खाण लिए जा रहे हैं। 20 और 30 के बीच कई तपस्याएं चल रही हैं। कौन मासखमण के रथ पर आरूढ़ होगा, समय के साथ ही ज्ञात होगा।

भाई-बहन अपने-अपने कर्तव्य को समझकर उसका पालन करते हुए ईमानदारी से आगे बढ़ेंगे तो धर्माराधना सही होगी। आनंद देने वाली बनेगी। हम धन्य-धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए फिलहाल विराम ले लेता हूँ।

24 अगस्त, 2023

3

गुरु चरण मिले शुभयोगे

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म।
पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।।

हमें अरिहंत प्रभु के उपदेश से धर्म का ज्ञान हुआ। अरिहंत प्रभु के दो प्रकार बताए गए हैं। एक सामान्य अरिहंत और दूसरे तीर्थंकर अरिहंत। हमें तीर्थंकर अरिहंतों के माध्यम से धर्म की प्राप्ति हुई। तीर्थंकर जैसे ही मोह को खपाते हैं, वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाते हैं। उनकी वाग्धारा, उनकी अमृतदेशना प्रवाहित होने लगती है। प्रथम देशना में ही अनेकानेक लोग खड़े होकर साधु बन जाते हैं, साध्वी बन जाती हैं। जो लोग साधु-साध्वी नहीं बन पाते हैं, उनमें से कई श्रावक-श्राविकाओं के व्रतों को स्वीकार करते हैं।

भगवान महावीर की भी प्रथम देशना प्रवाहित हुई, किंतु संयोग ऐसा बना कि व्रत को धारण करने वाला एक भी प्राणी वहाँ मौजूद नहीं था। यों कह दें कि उस सभा में कोई भी महाव्रती-अनुव्रती नहीं बन पाया। प्राय: ऐसा होता नहीं है, इसलिए इसको आश्चर्य माना गया है। अनंत काल के बाद कभी-कभार ऐसा कोई प्रसंग उपस्थित हो जाता है। वही प्रसंग भगवान महावीर के शासन में बना कि प्रथम देशना में कोई भी व्रतधारी नहीं बन पाया। दूसरी देशना में साधु-साध्वी बने, गणधर बने। उस धर्म का क्रियान्वयन दो तरह से हुआ।

श्रावक धर्म और साधु धर्म। अगार धर्म और अनगार धर्म। साधु धर्म

के लिए निश्चित मर्यादा है। उसमें कोई कटौती नहीं है। उसमें पसंद की कोई बात नहीं है। उसमें कोई च्वाइस नहीं हो सकती। जिसको अनगार बनना होता है, उसको पाँचों महाव्रत स्वीकार करने होते हैं। कोई विचार कर ले कि मैं एक, दो या तीन महाव्रत ले लूँ तो ऐसी कोई च्वाइस नहीं चलेगी। पाँचों महाव्रत स्वीकार करने होंगे। वह भी तीन करण, तीन योग से स्वीकारने होंगे। ऐसा नहीं कि कुछ योग, कुछ करण की छूट रख ले। छूट की कोई गुंजाइश नहीं है।

साधु जीवन को स्वीकार नहीं कर पाने वाले के लिए अगार धर्म है। अगार धर्म में च्वाइस के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार, सामर्थ्य के अनुसार व्रतों को स्वीकार किया जा सकता है।

कितने व्रतों को स्वीकार करने पर श्रावक हो सकते हैं?

एक व्रत स्वीकार करनेवाले भी श्रावक हो सकते हैं। दो व्रत स्वीकार करनेवाले भी श्रावक हो सकते हैं। यावत बारह व्रतों को स्वीकार करनेवाले भी श्रावक होते है, किंतु साधु जीवन के लिए ऐसा नहीं है कि वह एक, दो, तीन महाव्रत स्वीकार कर ले। साधु के लिए ऐसी व्यवस्था भगवान ने नहीं बताई। साधु को संपूर्ण नियमावली स्वीकार करनी पड़ेगी। उसमें कोई छूट नहीं है।

सेना के कानून और आम जनता के कानून में फर्क होता है। सेना के लिए जो पाबंदियां हैं वह आम जनता के लिए नहीं है। जैसे जनता के लिए अलग रूल्स होते हैं और सेना के लिए अलग, वैसे ही साधु के लिए अनगार धर्म की व्यवस्था और श्रावक के लिए अगार धर्म की व्यवस्था है।

'कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म'

एक बात निश्चित है कि साधु हो या श्रावक, दोनों की आराधना में अहिंसा को प्रधानता दी गई है। श्रावक भी अहिंसा की आराधना करता है और साधु भी अहिंसा की आराधना करता है।

'पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म'

विरक्ति का मार्ग, वैराग्य का मर्म गुरु के चरण से, गुरु की कृपा से प्राप्त हो पाता है।

'पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म'

गुरु के चरण पुण्य के प्रताप से प्राप्त होते हैं। यदि पुण्य नहीं हो तो गुरु

भगवंतों का सान्निध्य प्राप्त होना संभव नहीं होता। गुरु चरण मिल जाए तो समझ लेना चाहिए कि पुण्यानुबंधी पुण्य का योग है। पुण्य के उदय से गुरु के चरण मिले और वे चरण पुन: पुण्य का उपार्जन करने वाले बनेंगे। इस प्रकार पुण्यानुबंधी पुण्य का जब योग बनता है, तब जीव को गुरु की शरण प्राप्त होती है।

'अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि'

जब ऐसी शरण जीव स्वीकार कर लेता है तब उसमें वैराग्य अंकुरित होता है। वैराग्य का बीज पनपता है। फलित होता है। कभी-कभी लोग विचार कर लेते हैं कि गुरु की क्या आवश्यकता होती है! कुछ लोग सोचते हैं कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है।

आगम सम्मत बात है कि 'गुरु बिन ज्ञान नहीं आवे रे, गुरु बिन ज्ञान नहीं आवे।' सम्यक्त्व का प्रादुर्भाव होने में जिन पाँच लब्धियों की आवश्यकता होती है, उनमें एक देशना लब्धि को स्वीकार किया गया है। व्यक्ति में सम्यक्त्व कभी भी पैदा हो सकता है, किंतु उसके पहले किसी-न-किसी के द्वारा उसने केवली प्ररूपित धर्म को सुना अवश्य होगा। उसके बिना सम्यक्त्व प्रकट नहीं हो सकता।

भगवान महावीर का अंतिम समवसरण था। भगवान महावीर ने **'अपुट्ठवागरणा'** चालू की।

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।।

भगवान ने कहा कि मैं मुनि के विनय को प्रकट करूंगा। भगवान ने प्रयोग करके बताया कि मुनि का विनय कैसा होता है। गणधर गौतम से प्रभु ने कहा, गौतम! देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने जाना है। किससे कहा?

(श्रोतागण बोले- गणधर गौतम से कहा)

किसने कहा?

(श्रोतागण बोले- भगवान महावीर ने कहा)

गौतम स्वामी को क्या करना चाहिए था? दुनिया जान रही थी कि भगवान महावीर का अंतिम समवसरण है। उसके बाद दीदार होना बहुत कठिन

था। ऐसे कठिन समय में भगवान महावीर आज्ञा देते हैं कि गौतम! देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देना है। बहुत धर्मसंकट का समय था। हमारा मन इसके लिए शायद तैयार नहीं हो।

मैं जहाँ तक सोचता हूँ, यदि ऐसा प्रसंग हमारे सामने आ जाए तो हम विचलित हो जाएंगे। हम सोचेंगे कि दो दिन बाद उसको बोध दे दूँगा, किंतु गणधर गौतम विनय की साकार मूर्ति थे, वे उठे और रवाना हो गए। उनके मन में एक बार भी झिझक नहीं हुई। एक बार भी मन में ऊहापोह नहीं हुआ। एक बार भी यह नहीं सोचा कि भगवान ने यह कैसी आज्ञा दे दी। ऐसा कोई विचार उनके मन में पैदा नहीं हुआ कि भगवान का अंतिम समवसरण चल रहा है, भगवान जान रहे हैं कि मेरा मन कैसा है, मैं भगवान के वियोग को कैसे सहन कर पाऊंगा।

'गुरुणामाज्ञामविचारणीया।'

नीतिकार कहते हैं कि गुरु की आज्ञा अविचारणीय होती है। गुरु की आज्ञा करणीय होती है। गुरु ने कह दिया तो करूँ या नहीं करूँ, यह सोचने की आवश्यकता नहीं है। गुरु की आज्ञा है, बस पूरा करना है।

गौतम स्वामी के लिए सोचने का बहुत बड़ा अवकाश था कि भगवान बहुत गहरी चाल चल रहे हैं। मुझे रवाना करके सुधर्मा को आचार्य बनाना चाहते होंगे। क्या भगवान महावीर ने चाल चली?

(श्रोतागण बोले– नहीं)

हम भगवान को मानने वाले हैं, इसलिए बोल देते हैं कि उन्होंने चाल नहीं चली। यदि भगवान को नहीं मानते और दिमाग में राजनीति भरी होती तो निश्चित रूप से यही सोचते कि भगवान ने बहुत बड़ा खेल खेला है। बहुत बड़ा गेम खेला है कि गौतम कहीं उनकी व्यवस्था में बाधक न बन जाय, इसलिए उनको आउट कर दिया, उन्हें निकाल दिया और सुधर्मा स्वामी को आचार्य बना दिया, गणाधिप बना दिया। ऐसी ओछी सोच एक सामान्य व्यक्ति के भीतर पैदा हो जाती है, किंतु जहाँ आस्था, विश्वास और भरोसा होता है, श्रद्धा और समर्पणा होती है वहाँ पर ऐसे विचार पैदा हो ही नहीं सकते।

श्रद्धा थोड़ी खिसकेगी तो ऐसे प्रश्न पैदा होने की गुंजाइश बनेगी। श्रद्धा यदि हृदय में उतरी हुई है, भरी हुई है तो ऐसा कोई विचार पैदा हो ही नहीं

सकता। क्योंकि वहाँ पर जगह ही नहीं है, अवकाश ही नहीं है। अवकाश हो तो अन्य बात घुसे। अवकाश ही नहीं है तो अन्य विषय प्रवेश पाएगा कैसे। यदि श्रद्धा को थोड़ा खिसकाएंगे तो शंका पैदा हो सकती है। विचार पैदा हो सकता है किंतु श्रद्धा परिपूर्ण है, ओत-प्रोत है, भरी हुई है, तो ऐसी कोई विचारणा पैदा हो ही नहीं सकती। विश्वास रहेगा कि जो भगवान ने कहा है, किया है, वह एकदम सत्य है। परिपूर्ण सत्य है।

इंद्रभूति गौतम, भगवान महावीर के पास आने से पहले भी प्रकांड विद्वान थे। पाँच सौ शिष्य उनके नेतृत्व में साधना कर रहे थे, किंतु उनका मन स्वस्थ नहीं था।

मन की स्वस्थता की पहचान क्या है? कौन-सा मन स्वस्थ कहा जाएगा?

जिस मन में कोई संशय नहीं हो, कोई शंका नहीं हो, कोई ऊहापोह नहीं हो, कोई विकल्प नहीं हो, वह मन स्वस्थ कहलाता है।

इंद्रभूति गौतम जब तक भगवान के चरणों में नहीं आए, तब तक उनके मन में शंका थी। उनका मन भयभीत रहता था। मन भयभीत होने का कारण था कि उन्हें आत्मा पर पूरा भरोसा नहीं था और वे सोचते थे कि किसी ने मेरे संदेह को छू लिया तो मेरा पांडित्य खत्म हो जाएगा।

इस प्रकार का भय होना सामान्य है। ऐसा भय व्यक्ति को बना रहता है। व्यक्ति के मन में यह बात बनी रहती है कि मेरा पांडित्य जमा रहे, बचा रहे। यही बात उनके मन में भी थी, इसलिए उनका मन स्वस्थ नहीं था। उनके मन में ऊहापोह होता रहता था। मन समाधान पाने के लिए दौड़ता था, किंतु सारे रास्ते बंद मिलते थे। समाधान नहीं मिलता था।

वे पाँच सौ शिष्यों से आत्मा-परमात्मा की चर्चा करते, उन्हें समझाते, किंतु स्वयं उनके भीतर संशय बना रहता था। भगवान महावीर के पास पहुँचते ही भगवान ने उनका भय दूर कर दिया। उन्हें निर्भय बना दिया। कमजोरी व्यक्ति को भयभीत करती है। उसे आँखें दिखाती है। भगवान महावीर ने उस कमजोरी का ऑपरेशन करके संशोधन कर दिया और कहा, गौतम! तुम इतने बड़े विद्वान होकर आत्मा के विषय में संशय कर रहे हो। यह सुनते ही

गौतम के कान खड़े हो गए कि यह बात इनको कैसे मालूम पड़ गई! वहीं से उनकी श्रद्धा बन गई।

एक आवाज उनके जीवन को बदलने वाली हो गई। वे जिस उद्देश्य से आए थे वह उद्देश्य धरा ही रह गया। वे स्वयं भगवान महावीर के चरणों में नतमस्तक हो गए।

हमारा मन कितना स्वस्थ है?

अस्वस्थ मन इधर-उधर की सोचता रहता है। घड़ी के पेंडुलम की तरह डोलता रहता है। विचार इधर-उधर होते रहते हैं।

मिशन चंद्रयान तीन के बारे में आप लोगों ने सुन लिया होगा। इस संबंध में बड़े-बड़े वक्तव्य भी सामने आ गए हैं कि भारत गौरवशाली देश हो गया है। चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर सबसे पहले भारत ने लैंड किया है। जब तक वह लैंड नहीं हो गया, तब तक उसके प्रति आशंकाएं भी थीं। वैज्ञानिक कहते हैं अंतिम 20 मिनट का समय धड़कन रोकने वाला था। बड़ा महत्त्वपूर्ण था। उसके लैंड होने के बाद मन प्रसन्न हो गया। मन की सारी शंकाएं समाप्त हो गई, सारे विकल्प दूर हो गए। उसके पहले सबके मन में था कि क्या होगा, क्योंकि ऐसा ही 'मिशन-दो' पहले फेल हो गया था। फेल नहीं कह सकते, विफल हो गया था। उससे मन में डर बना हुआ था, किंतु जैसे ही सही सलामत लैंड हुआ भय खत्म हो गया। वैसे ही हमारे मन में दुविधाएं चलती रहती हैं। हमारा मन ही हमारे विचारों को काटने वाला हो जाता है। हम एक बार विचार करते हैं, सोचते हैं और हमारे ही दूसरे विचार उसकी काट करते हैं कि नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा होना चाहिए।

गुरु की शरण इसका समाधान है। मेरी बात ध्यान में लेना, क्या अर्थ होता है गुरु की शरण का? शरणागति का अर्थ क्या होता है?

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।'

तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही सबकुछ हो। शरणागति का अर्थ होता है, अब मेरा कुछ नहीं है।

महाभारत का एक दृश्य अपनी आँखों के सामने ले लेते हैं। दुशासन, द्रौपदी का चीर खींच रहा था। द्रौपदी कभी एक तरफ होती तो कभी दूसरी

तरफ। वह इधर-उधर होती रही। उसने काफी समय तक अपना जोर लगाया। उसने जब तक अपना जोर चलाया, तब तक उसके लिए लज्जा ढके रखना कठिन हो रहा था। कभी कहीं से अंग उघड़ता तो कभी कहीं से। जैसे ही उसने अपने आपको श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया वैसे ही दुशासन चीर खींचते-खींचते थक गया। उसकी भुजाएं, उसके कंधे दर्द करने लगे। वस्त्र के ढेर लग गए।

जब लगे कि अब मेरे वश की बात नहीं है, अब मेरा जोर नहीं चल सकता तो फिर अपने मन की दौड़ खत्म कर लो। उसे खत्म करके ही गुरु की शरण स्वीकार करने में सफल हो सकते हो अन्यथा गुरु के दर्शन हो जाएंगे, गुरु के चरण भेंट लेंगे, किंतु शरण स्वीकार करने का मौका नहीं मिल पाएगा।

हम बहुत बार बोलते और सुनते हैं, 'अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि' किंतु उनकी शरण में कितनी बार गए! आप बोलते हैं, म.सा.! मांगलिक सुना दीजिए, मांगलिक सुन भी लेते हैं, किंतु तीर्थंकर देव की, अरिहंत देव की शरण को कब स्वीकार किया या सिर्फ सुनकर छोड़ दिया।

अब सौंप दिया इस जीवन को, भगवान तुम्हारे हाथों में,

यदि भगवान के हाथों में अपना जीवन सौंप दिया, अपने आपको सौंप दिया तो हमारे हाथों में क्या रहा। यदि सच्चे मन से बात करूँ तो क्या हमने अपने आपको भगवान के हाथों में सौंप दिया? कभी सौंप पाए क्या? शायद नहीं। थोड़ा बचाकर रखते हैं। जो थोड़ा बच गया वही मार खाता है।

दुर्योधन की मौत किस कारण से हुई?

उसने एक स्थान को बचा कर रख लिया। भीम के द्वारा वहीं पर चोट हुई और मारणांतिक कष्ट उत्पन्न हुआ। यदि वह स्थान बचा हुआ नहीं होता तो युधिष्ठिर के वचनानुसार दुर्योधन का शरीर वज्रमय हो जाता। बाहर का कोई शस्त्र, कोई प्रहार उसका कुछ भी बिगाड़ने वाला नहीं हो पाता, किंतु दुर्योधन ने शरीर का थोड़ा-सा भाग बचा के रख लिया। जो बचाकर रखा, वहीं पर चोट पड़ी और वह निढाल हो गया। मर गया। हम भी जो बचाकर रख लेते हैं वही कोना नर्म रह जाता है। उसी से शंका-संदेह पैदा होते हैं। उसी से मन में ऊहापोह होने लगता है।

खाली घड़े को उलटा करके तालाब से पानी भरने की कोशिश करेंगे तो उसमें पानी नहीं भर पाएगा। क्यों नहीं भर पाएगा? हम जानते हैं कि उसमें हवा भरी हुई है। जब तक हवा बाहर नहीं निकलेगी, तब तक पानी का प्रवेश नहीं होगा। यदि घड़े को थोड़ा-सा टेढ़ा किया जाएगा तो हवा उससे बाहर निकलेगी और पानी अंदर भर जाएगा।

घड़े जैसे ही दिल की बात हो सकती है। जैसे घड़े में से वायु निकलने पर उसमें पानी भरेगा, वैसे ही दिल से संदेह निकलने पर उसमें श्रद्धा का प्रवेश होगा। यदि हमने बाहर के संदेह को प्रवेश दिया तो वह भीतर घुसकर अपना फैलाव करेगा और श्रद्धा वहाँ से हटती जाएगी, खिसकती जाएगी। इसलिए भगवान कहते हैं-

'संशयात्मा विनश्यति'

नीतिकारों ने बहुत सुंदर बात कही है कि मन में संशय रहेगा तो साधना से बाहर हो जाएंगे। इसलिए मन में संशय नहीं होना चाहिए। मन निर्मल-पवित्र होना चाहिए।

'पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म'

वैराग्य कैसे पैदा होता है, विरक्ति के भाव कैसे पनपते हैं, उसका बोध कैसे होता है, यह बात आगे के दोहे में बताई जाएगी। अब आगे क्या-क्या विचार होंगे और कैसे व्यक्ति के भीतर वैराग्य भाव पैदा होता है, यह बात समय के साथ सुनेंगे।

अभी सुनंदा की बात सुन लेते हैं। उसका दिल शांत है, प्रसन्न है। उसके मन में कोई ऊहापोह नहीं है। उसका मन एकदम स्वस्थ है। घर-गृहस्थी में रहते हुए उसके सामने अनेक प्रकार की बाधाएं आती हैं, किंतु वह मन को समाधिस्थ बनाए रखती है।

मन को शांत रखना बड़ी उपलब्धि है। मन की विषमता खतरनाक होती है। मन शांत रहता है तो सारी स्थिति साफ होती जाती है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
नाथ आपने सोचा हित में, मेरा भी जीवन अर्पित है,
कहूं थोड़ी सी बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

आप सुन ही चुके हैं कि विजय के लिए सुरेश एक प्रकार का काँटा था जो उसे बार-बार चुभ रहा था। विजय ने योजना बनाई कि सुरेश को पागलखाने में भरती कर दिया जाए। उसने डॉक्टरों से बात भी कर ली। रिश्वत के लालच में डॉक्टरों ने भी हाँ भर दी।

विजय ने अपनी बात सुनंदा के सामने रखते हुए कहा कि मैं तुम्हारे हित में विचार कर रहा हूँ। सुनंदा ने कहा, नाथ! आप मेरे हित में सोच रहे हो यह आपकी मेहरबानी है और ऐसे भाव आपमें होने भी चाहिए। मैं भी आपके चरणों में अर्पित हूँ, आपसे अलग नहीं हूँ, किंतु मेरा एक निवेदन सुन लीजिए। सुनंदा ने कहा कि जब वह पागल नहीं है तो पागलखाने में भरती कराने की बात कहाँ से आ गई। उसने कहा कि हम पैसों के बल पर सुरेश को पागलखाने में भरती करवा सकते हैं, किंतु सत्य सदा सत्य रहेगा। वह कभी असत्य नहीं हो सकता। दुनिया जाने या न जाने पर हमारा मन तो जान रहा है कि यह सही नहीं हो रहा है।

झूठ कभी ना टिकने पाता, इज्जत सारी दूर भगाता,
रहना उसके साथ, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

कितनी सुंदर बात बताई सुनंदा ने। जहाँ चित्त शांत होता है, पवित्र होता है, साफ-सुथरा होता है, वहाँ ही ऐसी बात सामने आती है। वहाँ चिकनी-चुपड़ी बात पैदा नहीं होती। सुनंदा कहती है, नाथ! जो झूठ है, वह एक दिन प्रकट होकर ही रहेगा। आज नहीं तो कल झूठ पकड़ा जाएगा। उसको दबाने के लिए या सही साबित करने के लिए अनेकानेक झूठ का प्रयोग करना पड़ेगा। अंततोगत्वा चीज वहीं-की-वहीं खड़ी रहेगी। सुनंदा ने कहा कि धन ज्यादा या कम लगने की बात नहीं है। जब दगाबाजी और धोखाधड़ी की बात भीतर आती है तो वह इस जन्म को भी निरर्थक करती है और भविष्य को भी बिगाड़ने वाली होती है। इसलिए किसी के साथ धोखाधड़ी नहीं करनी चाहिए। दगाबाजी नहीं करनी चाहिए।

सुनंदा ने कहा, आपने एक बात कही कि इसको पागलखाने में भरती करवाने से तुम्हें धर्म-ध्यान का अवकाश ज्यादा मिलेगा। किंतु नाथ! धर्म का स्वरूप क्या है और धर्म किसे कहा जाए? खाली धार्मिक क्रियाओं को करने से

मन शांत नहीं होगा, समाधि प्राप्त नहीं होगी। सच्चाई में जीएंगे तो मन शांत रहेगा। आप जो बात कर रहे हैं वह धर्म को खत्म करने वाली है। जो आश्रित होता है उसका ध्यान रखना धर्म होता है। जो अपने आश्रित को नहीं संभालता है वह धर्म के नाम पर धोखाधड़ी करता है। यह धर्म नहीं होगा कि मैं आपके कहे अनुसार सुरेश को पागलखाने में भरती करवा दूँ। हो सकता है कि ऐसा करने से थोड़ी देर के लिए आपकी ऊहापोह खत्म हो जाए, किंतु आपका मन कभी शांत नहीं रह पाएगा और न ही मेरी धर्म क्रिया सार्थक होगी। मैं, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय कर लूँगी, किंतु मुझे समाधि नहीं मिल पाएगी।

विजय विचार करता है कि मैं जो भी योजना बनाता हूँ सब फेल हो जाती है।

उसका एक ही लक्ष्य था सुरेश को घर से हटाना, किंतु सुनंदा के सामने उसकी योजना सफल नहीं हो पाती। उसका वश नहीं चल पा रहा था।

अब आगे सुनंदा और विजय में क्या बातचीत होती है, क्या वार्ता होती है, विजय क्या प्लान बनाता है यह समय के साथ सुन पाएंगे।

मुझे बताया गया है कि आज रतलाम, ब्यावर, उदयपुर, राजनांदगाँव और कलंगपुर (छत्तीसगढ़) संघ के लोग यहाँ उपस्थित हैं। लोगों की भावना रहती है कि म.सा. से मिच्छा मि दुक्कडं कर लेते हैं। म.सा. का आपने क्या बिगाड़ा, क्या अनबन हुई? खमतखामणा किससे करना? फिर भी भाव रहते हैं कि कभी मन में उतार-चढ़ाव आ गया तो खमतखामणा कर लेते हैं।

भावना अच्छी है आपकी। धर्म ध्यान से मन को शांत बनाएं। मन में विरक्ति के भाव पैदा हों ऐसा लक्ष्य बनाएं। आज के पच्चक्खाण में यही बात पच्चक्खाने की बताई गई है।

'मानव का शुभ तन-मन पाया, व्रतधारी बनूँ व्रतधारी बनूँ।'

साहस हो तो पंच महाव्रत स्वीकार करने चाहिए। यदि वैसा सामर्थ्य आज पैदा नहीं हो रहा हो तो जीवन पर्यंत के लिए कम-से-कम एक व्रत स्वीकार किया जाना चाहिए, ताकि कह सकें कि हमारे मन-मस्तिष्क ने भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति में प्रवेश किया। उसको स्वीकार किया। मैं भी

भगवान महावीर के चतुर्विध संघ का एक सदस्य बन गया। श्रावक हो गया।

यदि त्याग-पच्चक्खाण नहीं लिए तो औपचारिक सदस्य हैं, अधिकृत नहीं। जिन्होंने त्याग-पच्चक्खाण कर लिया वे अधिकृत सदस्य हो जाएंगे। अपनी आत्मा को त्याग-पच्चक्खाण से भावित करें।

तपस्या की दौड़ में महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की आज 13 की तपस्या है। बहनों में अरुणा जी रंगवाला की आज 24 की तपस्या है। सुनीता जी आंचलिया की आज 27 की तपस्या है। सरिता जी मुणोत की आज 57 की तपस्या है। किरण जी हिंगड़ की आज 59 की तपस्या है। इन तपस्वी आत्माओं से प्रेरणा लें।

'पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।'

यदि गुरु की शरण स्वीकार कर पाएंगे तो शांत बनेंगे। मन समाधि में रहेगा और ऊहापोह खत्म होगी। ऐसा प्रयत्न करें और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए फिलहाल विराम ले लेता हूँ।

25 अगस्त, 2023

4

तन को नश्वर जान

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म।
पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।।
तन मरता तन जन्मता, तन को नश्वर जान।
जो तन से उपरत बने, वो पाता सद्ज्ञान।।

वैराग्य भाव कब, किसको, कहाँ और कैसे पैदा हो जाता है, एकदम निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता। छोटी सी बात भी वैराग्य पैदा कर सकती है और बहुत बड़े विद्रोह का भाव भी मनुष्य झेल सकता है। बहुत बड़ी कठिनाई भी आई-गई हो जाती है।

सही चाबी को एक बार घुमाने से ताला खुल जाता है जबकि चाबी सही नहीं हो तो बार-बार घुमाने से भी ताला खुल नहीं पाएगा। चाबी उपादान है और घुमाना निमित्त। उपादान सही होता है तो कोई भी निमित्त काम कर जाता है। छोटा सा निमित्त कारगर हो जाता है।

सुभद्रा का थोड़ा सा बोल धन्ना जी को जगाने वाला बन गया। थावच्चा पुत्र एक झटके में जग गए। उपादान सही होने और समय पर निमित्त का योग बनने से जागरण हो गया। कई बार बात दिखने में बहुत छोटी लगती है, किंतु उसका परिणाम और बदलाव बहुत बड़ा हो जाता है।

तन मरता तन जन्मता, तन को नश्वर जान।
जो तन से उपरत बने, वो पाता सद्ज्ञान।।

हमने अभी तक बहुतों को जन्म लेते हुए देखा होगा। बहुतों को मरते हुए देखा होगा। हमने भी कंधा देकर कइयों को ठिकाने पहुँचाया होगा, पर क्या कभी सोचा कि मुझे भी कोई ठिकाने पहुँचाएगा! हमारा कौन-सा ठिकाना है?

(श्रोतागण बोले- हमारा ठिकाना श्मशान है)

श्मशान के बाहर लिखा होता है मुक्ति स्थान, मोक्ष स्थान। नाम बड़ा सुंदर चुन लेते हैं लोग।

एक सेठ ने बंगला बनवाया। बड़ा सुंदर बंगला था। सेठ, बंगले को देखकर मन में खूब खुश होता। वह मन-ही-मन प्रसन्न होता कि इतना मैंने सुंदर बंगला बनवाया। कोई बाहर से आता तो वह उसको बोलता, म्हारी कुटिया में भी पगलिया करें। इसके पीछे उसका भाव रहता था कि मेरा बंगला देखकर देखने वाला बोले, वाह साहब! क्या बंगला बनाया है आपने। बहुत सुंदर बंगला बनाया है।

एक जज ने एक बंगला बनवाया और बताया कि म.सा. 100 देशों की चीजें लाकर बंगला बनवाया है। 'कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा...।' कहीं से पत्थर लाया, कहीं से ईंट लाया, कहीं से फर्नीचर लाया, कहीं से सीमेंट लाया। कहीं से कुछ तो कहीं से कुछ लाया। वह कहता है कि मेरा अपना रिकॉर्ड है। लोग रिकॉर्ड बनाते हैं। अर्जुन माली ने भी रिकॉर्ड बनाया था। 1141 व्यक्तियों को मारकर मोक्ष चला गया। रिकॉर्ड अपने-अपने होते हैं। ग्रंथों में, शास्त्रों में दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो 1141 व्यक्तियों को मारकर मोक्ष में चला गया। उस समय गिनीज बुक नहीं था, नहीं तो उसमें उसका नाम लिखा गया होता।

उस सेठ ने बंगला बनवाया। घूमते-घूमते एक संत भी वहाँ पहुँच गए। संत को देखकर सेठ ने कहा, म.सा.! पधारो, कृपा कराओ। संत चले गए अंदर। सेठ, संत को एक कमरे से दूसरे कमरे में घुमा रहा था। संत कुछ नहीं बोल रहे थे। वे शांत थे। सेठ, संत को बंगला दिखाकर बाहर आया तो पूछा, म.सा. कैसा लगा? म.सा. ने कहा, एक भूल रह गई।

संत ने कहा, एक बहुत बड़ी भूल रह गई। सेठ ने पूछा, म.सा.! क्या भूल रह गई? संत ने कहा, इसमें दरवाजा क्यों रखा। सेठ सोचने लगा कि संत

इतना सुंदर बंगला देखकर चकरा तो नहीं गए। सेठ ने कहा, भगवन्! गेट रखना जरूरी होता है, इसमें गलती क्या रह गई। संत ने कहा, इसी गेट से मौत आएगी।

बात आई-गई हो गई। सेठ कहने लगा, म.सा. अभी तक मैंने बंगले का नामकरण नहीं किया है, आप सुंदर सा नाम बताइए। संत ने कहा, भाई! रहने दो। हम उलटी खोपड़ी के लोग हैं।

राजा, जोगी, अगन, जल, इनकी उलटी रीत।
बचकर रह्यो परसराम, थोड़ी पाले प्रीत।।

संत ने कहा, भाई! हम उलटी मति के लोग हैं, इसलिए मुझसे मत पूछ। मेरी बात तुमको पसंद नहीं आएगी। सेठ ने कहा, नहीं-नहीं गुरुदेव। आप फरमाइए। मैं बहुत समय से आपका इंतजार कर रहा था, कोई सुंदर सा नाम दीजिए। संत ने कहा, सही में मेरी बात मानोगे ना? सेठ ने कहा, मैं आपसे एकदम विनम्रतापूर्वक निवेदन कर रहा हूँ। संत ने कहा, इसका नाम मरघट रख दो। सेठ को थोड़ा अटपटा लगा कि ऐसी कैसी बात कर रहे हैं। मरघट का अर्थ क्या होता है?

(श्रोतागण बोले- मरघट का अर्थ श्मशान होता है)

उत्तर सही नहीं है। मरघट का अर्थ श्मशान नहीं, वह घाट होता है जहाँ पर लोग मरते हैं। लोग कहाँ मरते हैं? अब मरनेवाले घर में नहीं मरते। जन्म लेते हैं तो हॉस्पिटल में और मरना है तो हॉस्पिटल में। ज्यादातर लोग कहाँ मरते हैं? हॉस्पिटल में। क्योंकि लोग वहीं ले जाते हैं, किंतु मैं पूछ लूँ कि वहाँ तो भगवान हैं ना? वे तो मरीज को बचा लेंगे ना? कोरोना काल में 14 दिनों तक घर में क्वारंटाइन रहने वाले लोग तो फिर भी सुरक्षित रहे होंगे, किंतु हॉस्पिटल गए हुए लोग कितने बचकर आए? हॉस्पिटल में दवाओं के डोज पर डोज लगाए गए। हाई डोज लगाए गए। दवाइयाँ पर दवाइयाँ दी गईं, इंजेक्शन पर इंजेक्शन लगाए गए, जबकि पहले ही बता दिया गया था कि इसकी कोई दवा नहीं है।

मैं जोधपुर में था। वहाँ एक भाई को कोरोना होने पर अहमदाबाद ले गए। जिस समय अहमदाबाद ले गए उस समय उसे उतनी तकलीफ नहीं थी।

जाने के पहले वंदना की, मांगलिक सुनी। वहाँ जाने के बाद डॉक्टरों ने इतनी दवाइयाँ दीं जिनका कोई मतलब ही नहीं था। वहाँ से आने के बाद उनके पुत्र ने दवा की लिस्ट बताई तो लगा कि शायद दवाइयाँ ही उसको ले गई। इतने भारी डोज देने शुरू कर दिए, जिसको सहन करने की ताकत भी शरीर में नहीं थी, किंतु सामने कोई दूसरा उपाय नहीं है तो जाएं कहाँ पर। हॉस्पिटल ही शरणभूत रहता है। व्यक्ति सोचता है कि हॉस्पिटल जाने पर बच जाऊँगा, किंतु मौत आ जाय तो वहाँ भी बचना मुश्किल है।

खैर, संत ने बंगले का नाम मरघट बताया। सेठ ने कहा, ऐसा कैसे बोल रहे हैं, यह श्मशान नहीं है।

श्मशान में आदमी मरा नहीं करता। कितने लोग श्मशान में मरे? दो-चार नाम तो बताओ जो श्मशान में मरे। संत ने मरघट की व्याख्या करते हुए कहा कि आदमी जहाँ मरता है, वह मरघट है। या तो आदमी घर में मरता है या हॉस्पिटल में मरता है। सड़क पर दुर्घटना में मर जाए, हार्ट-अटैक से मर जाए पर अधिकांश आदमी या तो घर में मरता है या हॉस्पिटल में। ऐसी स्थिति में मरघट कौन-सा स्थान हुआ? घर ही मरघट होता है। घर में ही लोग मरते हैं, इसमें संत ने गलत क्या बोला। संत ने शायद बहुत सोच-समझकर बताया होगा, किंतु घर का नाम मरघट रखना हमें अच्छा नहीं लगेगा। यदि आपको मालूम पड़ जाए कि एक सप्ताह में मौत आने वाली है तो आप क्या करेंगे?

(श्रोतागण बोले- साधु बन जाएंगे)

आपको मौत का समय बता दूँ! अभी कौन-सा वर्ष चल रहा है?

(श्रोतागण बोले- सन् 2023 चल रहा है)

सन् 2123 से पहले-पहले आपकी मौत है। 2123 से पहले मौत आएगी। न मैं मिलूंगा और न आप मिलेंगे। मैं आपको फाइनल समय बता रहा हूँ। अब आप बोलेंगे कि अभी तो 100 वर्ष पड़े हैं, इतने समय तक आराम से जीएंगे।

तन मरता तन जन्मता, तन को नश्वर जान।
जो तन से उपरत बने, वो पाता सद्ज्ञान।।

बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। इसके पीछे झाँककर देखें कि हम

किसकी आराधना कर रहे हैं? शरीर की आराधना कर रहे हैं या आत्मा की? दो चीजें हमारे पास हैं, शरीर और आत्मा। हम ज्यादा महत्त्व किसको दे रहे हैं और मरेगा कौन?

(श्रोतागण बोले- हम ज्यादा महत्त्व शरीर को दे रहे हैं और वही मरेगा)

जो अजर-अमर है, जो शाश्वत है, उसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं है। आत्मा को संकट में फँसाते जा रहे हैं। संकट में कौन फँसेगा?

(श्रोतागण बोले- संकट में आत्मा फँसेगी)

यह जान रहे हैं कि आत्मा संकट में फँसेगी, उसके बावजूद शरीर को महत्त्व दे रहे हैं। अनादिकाल से हमने शरीर को महत्त्व दिया है। केवल एक जन्म में इतना महत्त्व आत्मा को दिया होता तो कल्याण हो जाता। शास्त्रों में गौतम स्वामी आदि के लिए उच्छूढ़ शरीरी विशेषण का उपयोग किया गया है।

उच्छूढ़ शरीरी का अर्थ क्या है?

उच्छूढ़ शरीरी का मतलब है कि जो शरीर से उपरत हो गए। जिन्होंने सोच लिया कि अब शरीर की देख-भाल नहीं करना, वह उच्छूढ़ शरीरी है। शरीर किराए की झोंपड़ी है। किराए की झोंपड़ी के लिए अपना धन क्यों खर्च करूँ। जितने दिन तक रहना है उतने दिन के लिए ही मरम्मत करना ठीक है। ज्यादा करने से मेरे पैसे जाएंगे। इसी प्रकार एक दिन इस शरीर को छोड़ना पड़ेगा। जीवन निर्वाह के लिए जो थोड़ी भी मरम्मत करनी है उतनी ही मरम्मत झोंपड़ी के लिए करना।

किराए के मकान में आप कितना खर्च करेंगे? केवल मरम्मत का काम करेंगे, क्योंकि उसमें रह रहे हैं। जिस दिन मकान गिरने जैसा लगेगा उस दिन क्या करेंगे?

(श्रोतागण बोले- उस दिन मकान खाली कर देंगे)

यह मकान कब गिरेगा? (शरीर को इंगित करते हुए)

जैसे सेठ ने सुंदर बंगला बनाया, वैसे ही हमारी आत्मा ने सुंदर शरीर बनाया है। बंगला रहने के लिए होता है। आत्मा के लिए शरीर बंगला है। आत्मा शरीर में विराजमान है। आत्मा के लिए आँख, कान, नाक आदि

खिड़कियाँ हैं। इनके माध्यम से वह जानकारी लेती रहती है कि बाहर क्या हो रहा है, दुनिया में क्या हो रहा है।

इस बंगले को बनाने में हमने कितना खर्च किया? हमने कई जन्मों में संचित पुण्य इसमें लगा दिया? बनिये का पैसा किसमें लगता है?

भाटे में, पत्थर में, बंगला बनाने में बनिये का पैसा लगता है। पैसे कम पड़ रहे होंगे तो बैंक से लोन ले लेगा। कच्चे मकान में भी रह रहा था। फ्लैट में भी रहना हो रहा था किंतु व्यक्ति के पास सुविधा होती है तो वह सोचता है कि अब अपना बंगला बनाऊँ। सुंदर बंगला बनाऊँ। लोगों को आकर्षित करने जैसा बंगला बनाऊँ। लोग बंगले को देखें तो बोल पड़ें कि वाह! क्या बंगला बनाया है। कह उठें कि किस माई के लाल ने ऐसा बंगला बनाया है। कोई बंगला चाहे जैसा भी बना ले, किंतु यह नहीं कह सकता कि वह मरेगा कहाँ। कृष्ण वासुदेव को भी द्वारिका में मरना नसीब नहीं हो पाया। इसलिए कहावत हो गई–

कहाँ जाया कहाँ उपनिया, कहाँ लडाया लाड।
क्या जाणू क्या होवसी, कहाँ पड़ेगा हाड।।

जन्म कहीं पर हुआ, पैदा कहीं पर हुए, लाड कहीं पर लडाया गया। भविष्य में क्या होगा कुछ नहीं कहा जा सकता। यह कहना बहुत कठिन है कि कहाँ यह शरीर गिरेगा और कहाँ मौत हो जाएगी। शरीर के लिए हम क्या-क्या नहीं कर लेते हैं। थोड़ी देर के लिए समझ लो कि डॉक्टर ने कह दिया कि 'रेड मार्क' (मांस मिला हुआ) दवाई लेनी पड़ेगी तो क्या करोगे?

(श्रोतागण बोले- दवाई नहीं लेंगे)

किंतु डॉक्टर ने यह भी कहा है कि इसके अतिरिक्त बचने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। अब क्या करेंगे? जुबान बंद क्यों हो गई? डॉक्टर से कहेंगे कि डॉक्टर साहब! इसके अलावा कोई विकल्प हो तो बताइए। डॉक्टर ने कह दिया कि इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है। पर सोचें, डॉक्टर जो दवा देगा उससे बच तो जाओगे ना? उससे बचना फाइनल है क्या? वह भी निर्णायक नहीं है कि बच जाएंगे।

हमारे एक संत थे, इंद्रचंद जी म. सा.। सुराणा परिवार से थे। उनको

कभी-कभी मिर्गी जैसा दौरा आ जाता था। एक वैद्य को बताया तो उसने कहा कि इनके लिए स्पेशल दवाई बनानी पड़ेगी। आकाश में उड़ते हुए पक्षी का तीर से शिकार कर उसके खून से दवाई बनानी होगी। हमने कहा, कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि उसके बाद ठीक हो ही जाएंगे। ठीक होना निश्चित भी हो तो भी किसी पक्षी को तीर से मारना, उसके खून से दवाई बनाना साधुओं के लिए सर्वथा वर्जित है। हमने कहा, ऐसी दवाई नहीं करनी।

शरीर की तरफ ध्यान जाएगा तो शरीर प्रधान हो जाएगा। जहाँ शरीर को महत्त्व मिल जाता है वहाँ लड़ाई-झगड़ा, मार-काट चालू हो जाती है। धर्म गौण हो जाता है।

कल या परसों एक अखबार में समाचार पढ़ा कि एक शराबी ने अपने पिता की हत्या इसलिए कर दी कि पिता ने कहा, बेटा! शराब नहीं पीना। पिता ने बेटे को शराब न पीने की शिक्षा दी तो बेटे को अच्छा नहीं लगा और उसने उसकी हत्या कर दी। ऐसी कोई एक घटना नहीं है। आए दिन अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि बाप को कुल्हाड़ी से काट दिया, बाप ने बेटे को मार दिया। ये सारे खेल क्यों हो रहे हैं। एक गीत है-

'निज भारत देह बचाओ रे...'

यह हमारा भारत देश एक शरीर रूप है। इसको कैसे बचाओगे? इसका बचाव कैसे करोगे? नशे की चीजें भारत की अस्मिता को समाप्त करने वाली होंगी। एक सर्वे (आँकड़ा) आया था, क्या याद है आपको?

उसके अनुसार 2022 में 16 लाख टन मांस भारत से निर्यात हुआ। हमें पेट्रोल-डीजल चाहिए। हमारी गाड़ियाँ उनके बिना नहीं चलेंगी। हमें दूसरी विदेशी चीजें भी चाहिए। उसके बदले में हमें क्या देना पड़ रहा है? उसके बदले में गाय व अन्य जीवों का मांस देना पड़ रहा है। हम रिकॉर्ड बना रहे हैं। हम कैसे बचाएंगे अपनी अस्मिता को! हम अंतगडदशा सूत्र में सुन ही चुके हैं कि द्वारिका के विनाश के मुख्य कारणों में एक कारण शराब था।

भारत को डुबाने के लिए जिम्मेदार कौन होगा?

(श्रोतागण बोले- भारत को डुबाने के लिए शराब कारण होगा)

शराब के पीछे न जाने कितने अपराध हो रहे हैं। कितनी मार-काट हो

रही है। परिवार के परिवार उजड़ रहे हैं। इसके बावजूद कितने लोगों ने आवाज उठाई! शराब के कारण घर में क्लेश होता है, मारपीट होती है। ऐसे स्थानों पर सरकार मूक हो जाती है। लोग कहते हैं उससे राजस्व मिलता है। राजस्व के लिए ऐसा काम करते जाओ।

राजस्व बड़ी बात है या समाज और परिवार की सुरक्षा?

शराबी व्यक्ति के दिमाब में शराब पीते समय जो बात घुमा दी जाती है, वही बात बाद में घूमती रहती है। अपराध कराने वाले, शराबी के दिमाग में पहले बात भरते हैं और बाद में शराब पिला देते हैं। इससे शराबी के दिमाग में वही बात घूमती रहती है और वह अपराध कर देता है। उस समय उसको दूसरी बात सूझती ही नहीं है।

50 वर्ष पहले जितने अपराध होते थे उससे बढ़े या घटे?

(श्रोतागण बोले- बढ़े)

पैसे बढ़े या घटे?

(श्रोतागण बोले- पैसे बढ़े)

पैसों की कमी से यदि कोई लड़ाई-झगड़ा करे तो बात समझ में भी आए कि पैसों के लिए झगड़ा कर रहा है। पहले शराब के कारखाने कितने थे और अभी कितने हैं? अभी नए कारखाने कितने खुल गए? हमें आँकड़ों से कोई लेना-देना नहीं है। हम भारत में रह रहे हैं, किंतु यहाँ क्या हो रहा है उससे हमें कोई सरोकार नहीं है। हम आँख मूँदकर बैठे हुए हैं। संत कई बार बोलते हैं कि शराब पीना, नशा करना खराब है, किंतु उनकी आवाज चारदीवारी के अंदर रह जाती है। वह आवाज सरकार तक पहुँच जाए बहुत मुश्किल है।

हम चंद्रयान तीन की सफलता पर गर्व मना रहे हैं, आकाश में उड़ रहे हैं। इससे हमारी जमीन मजबूत हो जाएगी जरूरी नहीं है। आकाश में उड़ना एक बात है और घर की नींव मजबूत होना दूसरी बात है। जरा सोचो कि हमारी नींव खिसक तो नहीं रही है! हमारे संस्कारों की नींव यदि खिसक रही है तो उसका कारण ढूँढो कि क्या कारण है जो संस्कारों की नींव खिसक रही है।

तन मरता तन जन्मता, तन को नश्वर जान।
जो तन से उपरत बने, वो पाता सद्ज्ञान।।

जो तन से ऊपर उठ जाता है, जिसकी दृष्टि आत्मा पर टिक जाती है, वही सच्चा ज्ञान पा सकता है। उसे ही आत्मज्ञान पैदा हो सकता है। जब तक किताबों का ज्ञान मिलता रहेगा, तब तक शरीर पर दृष्टि रहेगी। उससे आत्मा का ज्ञान, आत्मा की अनुभूति संभव नहीं है। हमारा लक्ष्य शरीर को सुंदर और सुदृढ़ बनाने का बना हुआ है। इसके लिए लाख उपाय किए जा रहे हैं कि शरीर में बुढ़ापा न आए, किंतु आत्मा के ऊपर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आत्मा पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तो उसका भला कहाँ से होगा!

सुनंदा की बात भी चल रही है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
बंद कर यह उपदेश तेरा, समझ-समझ का है ये फेरा,
आया तब आवेग, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा के संस्कार बहुत सुंदर थे। विजय ने धर्म की दुहाई दी तो सुनंदा ने उसे समझा दिया कि धर्म क्या होता है। वह बताती है कि अपने आश्रित व्यक्ति की सार-संभाल नहीं की जाएगी तो वह धर्म नहीं होगा। धर्म कहता है कि यदि कोई दूसरा संभालने के लिए तैयार है तो कोई बात नहीं, यदि कोई दूसरा जिम्मेदारी नहीं ले रहा हो तो जो आपके आश्रित है, उसकी देख-भाल आपको करनी है। चाहे गाय-भैंस ही क्यों न हो। गाय-भैंस को भी पहले चारा-पानी नहीं दिए जाने पाने पर धर्म क्रिया नहीं कलपेगी। गाय-भैंस भूख-प्यास से तड़प रही हो और कोई सोचे कि मैं पहले सामायिक करूंगी या करूंगा तो उचित नहीं है।

पहले क्या होना जरूरी है?

(श्रोतागण बोले- पहले गाय-भैंस को चारा-पानी देना जरूरी है)

यदि कोई दूसरा हमारे आश्रित है तो उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी का पहले निर्वाह करना पड़ेगा।

सुनंदा ने आगे कहा, नाथ! धर्म क्या कह रहा है, मैं समझ रही हूँ। धर्म कभी यह नहीं कहता है कि आश्रित व्यक्ति की उपेक्षा करो। मरे तो मरने दो। सुनंदा, विजय को कई प्रकार से समझाने लगी।

जब सारे उपाय, सारे तर्क खत्म हो जाते हैं तो व्यक्ति को गुस्सा आता

है। विजय को भी गुस्सा आया। वह गुस्से में सुंनदा से कहता है, बंद कर अपना उपदेश। बहुत सुन लिया तुम्हारा उपदेश। बहुत समय से उपदेश दे रही हो।

किसी को दबाने के लिए व्यक्ति गुस्सा कर लेता है। गुस्सा करने का मतलब है कि उसके पास अब कोई दूसरा उपाय नहीं है। जब तीर, धनुष, तलवार, भाला सब बेकार हो जाते हैं तो व्यक्ति गुस्से के रूप में चक्र चलाना चाहता है। जैसे प्रति वासुदेव का वध करने में सारे शस्त्र नाकामयाब हो जाते हैं तब वासुदेव चक्र चलाते हैं।

विजय ने आवेश में कहा कि बहुत सुन लिया तुम्हारा उपदेश। मुझे रोज-रोज की कच-कच पसंद नहीं है। तत्काल वह अपनी बहन को समाचार भेजता है कि रोज की कच-कच मुझसे नहीं सही जाती। मैंने लाख उपाय कर लिए। बहुत सारे उपाय कर लिए, किंतु यह अपनी जिद नहीं छोड़ती। जैसे उसने सुरेश के साथ ही शादी की हो। जैसे मैं उसका कुछ लग ही नहीं रहा हूँ। अब मैं ज्यादा सहन करने की स्थिति में नहीं हूँ। मैंने अंतिम उपाय सोच लिया है कि अब इसे तलाक देना चाहिए।

बहन-बहनोई के पास समाचार पहुँच गया। क्या करेंगे बहन-बहनोई? आप भी किसी-न-किसी के बहन-बहनोई होंगे। आपके पास ऐसा समाचार आए तो आप क्या करेंगे?

(श्रोतागण बोले- हम समझाएंगे)

क्या समझाओगे? किसे समझाओगे?

अपनी खींच को, अपनी बात को जब कोई छोड़े ही नहीं तो समझाओगे किसे?

समझ समझ संसार में, समझे वे नर थोड़ा।
समझायां समझे नहीं, वे प्रजापत रा घोड़ा।।

किसको समझाएंगे?

कोई समझने के लिए तैयार ही नहीं हो तो उसको कैसे समझा पाएंगे।

एक माँ अपने होने वाले दामाद से कहती है कि शादी के बाद आप मेरी बेटी को अमेरिका घुमाओगे हो तो ही यह रिश्ता होगा, नहीं तो नहीं होगा। होने वाले दामाद ने स्वीकृति नहीं दी। उसने हाँ नहीं भरी। लड़की की माँ ने

रिश्ता कैंसल कर दिया। वह बोलती है कि मेरी लड़की इधर-उधर घूमनी चाहिए।

कई लड़कियों की आदत होती है घूमने की। घर-परिवार से उनको कोई लेना-देना नहीं होता। कर्तव्य/दायित्व/जिम्मेदारी से उनको कोई लेना-देना नहीं होता। उनको तो सिर्फ मौज करनी है। शौक पूरा करना है। शॉपिंग करनी है। वे कहती रहेंगी, मुझे शॉपिंग कराओ।

दूसरे एक घर में बहूरानी है। वह चातुर्मास में कहीं नहीं जाती। वह सोचती है कि ऐसा सुंदर मौका मिला है, क्यों इधर-उधर घूमना और घूमने से मिलेगा क्या। अमेरिका जाएंगे तो संतों के दर्शन हो जाएंगे क्या? कई लोग विदेश जाकर पैसा कमाना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि वहाँ स्टेटस ज्यादा ठीक है। सभी कुछ बढ़िया होगा, किंतु वहाँ धर्म नहीं मिलेगा। संतों के दर्शन नहीं होंगे। टी.वी. पर भले ही दर्शन कर लो, किंतु साक्षात् दर्शन कर पाना मुश्किल है।

हमारे अनन्य मुनि जी म.सा. को वर्षों पहले 33 लाख का पैकेज मिल रहा था। उन्हें विदेश में काम नहीं करना था, इसलिए उन्होंने उस पैकेज को ठुकरा दिया। उनका मानना था कि जहाँ न साधु-संतों का योग मिले, न धर्म-ध्यान हो और न ही माता-पिता का सान्निध्य मिले, वहाँ पैसा किस काम का। आज बहू सोचती है कि मैं विदेश चली जाऊंगी तो फ्री हो जाऊंगी। सास-ससुर की रोज-रोज की खट-पट नहीं सुननी पड़ेगी।

न्यारा हो जाओ भरतार, भेला रेविजे कोनी।
थारो खोड़ीलो परिवार, म्हासूं सहीजे कोनी।।

बहू कहती है कि अब रोज-रोज की खट-पट सुनी नहीं जाती है। मुझे आप अपने साथ अमेरिका ले चलो। सीता भी राम के साथ गईं, मैं क्यों पीछे रहूँ। सीता किसलिए गईं? सीता शॉपिंग करने के लिए गईं क्या? घूमने के लिए गईं क्या? अब हमारी सीताएं कहाँ जा रही हैं, किसलिए जा रही हैं? सास-ससुर की टर-टर नहीं सुननी पड़े इसलिए मुझे भी साथ ले चलो। सुनने में आता है कि आजकल की कुछ बहुएं कहती हैं कि सास-ससुर रोज-रोज शिक्षा देते हैं, हम भी पढ़े-लिखे हैं। हम भी समझते हैं, रोज-रोज क्या शिक्षा

देनी?

जब तक बहू का मुँह नहीं खुलता है, तब तक सब ठीक है। जिस दिन सास के सामने मुँह खुल गया उसके बाद तो तालियाँ बजेंगी। ढोल-नगाड़े बजेंगे।

अभी आपने एक बहू की बात सुनी कि वह चार महीने संतों का सान्निध्य छोड़ कहीं बाहर नहीं जाती। वह सोचती है कि विवेक-यतना, गोचरी-पानी बहराने का लाभ मिलेगा, मौका मिलेगा। वह चौमासे में कहीं पर घूमने जाने का नाम नहीं लेती। उसको सासु माँ कार्तिक की पूर्णिमा के दिन तिलक लगाती है और ग्यारह हजार रुपए भेंट करती है। ऐसी सासु माँ भी दुर्लभ है और ऐसी बहू भी दुर्लभ है।

किसी का कहीं जाने का नम्बर आ जाए, टूर करने का नंबर आ जाए, चंद्रयान पर जाने की सुविधा मिल जाए तो क्या होगा। कहाँ घूमकर आओगे?

(श्रोतागण बोले- चंद्रयान पर घूमकर आएंगे)

क्या मिलेगा वहाँ पर? क्या देखकर आओगे? चाँद यहाँ से भी दिख रहा है, वहाँ जाकर क्या करोगे।

खैर, जो भी हो, किंतु हमारी विचारधारा क्या होनी चाहिए? शरीर को महत्त्व देना या आत्मा को? आत्मा को महत्त्व देंगे तो सद्ज्ञान होगा। यह ज्ञान होगा कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मेरा स्वरूप क्या है। बार-बार जन्म-मरण करना और इसी कीचड़ में पड़े रहना मेरा लक्ष्य नहीं है।

विजय ने बहन-बहनोई को समाचार पहुँचाए। फिर भी उनको आने में टाइम लगेगा। ट्रेन में आएंगे तो भी टाइम लगेगा और गाड़ी में आएंगे तो भी टाइम लगेगा। पास में तो हैं नहीं कि तुरंत आ जाएं। बहन-बहनोई क्या बात करते हैं, क्या समझाते हैं, आगे क्या विचार चलते हैं, समय के साथ जान पाएंगे।

इस तरह की बात केवल विजय की ही नहीं है। यह कहानी केवल विजय की ही नहीं है। यह हर घर की कहानी है। घर-घर में ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं। ऐसे खेल खेले जाते हैं। पात्र बदल जाते हैं, कारण बदल जाते हैं, किंतु घटनाएं इसी प्रकार की घटती हैं कि मेरी बात रहनी चाहिए। मेरी बात नहीं

रही तो मैं डंडे-से-डंडा बजा दूँगा।

बंधुओ! हम विचार करें। हमारी संस्कृति क्या रही है और हम किस संस्कृति में जी रहे हैं। हमारा क्या लक्ष्य होना चाहिए और हम किस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहे हैं। हम छोटे-छोटे विवादों में उलझ जाते हैं। गहराई से विचार करने की आवश्यकता है कि विवादों से क्या फायदा होगा। विचार करके शुद्ध लक्ष्य निर्धारित करें कि मुझे क्या करना है। मेरे द्वारा क्या किया जाना चाहिए। अब तक मैंने क्या किया, भविष्य में मुझे क्या करना चाहिए। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे।

तपस्या के दौर में महासती श्री स्तुति श्री जी म.सा. की आज 14 की तपस्या है। बहनों में सुनीता जी आँचलिया की आज 28 की तपस्या है। सरिता जी मुणोत की आज 58 की तपस्या है।

सुमित मुनि जी म.सा. ने आपको बता दिया कि खमत खामणा और क्षमायाचना किससे करनी। अत: क्षमायाचना के लिए दौड़-भाग करने की जरूरत नहीं है। दौड़-भाग करेंगे, गाड़ियों से चलेंगे तो जीवों की विराधना होगी। किससे क्षमायाचना लेंगे, इस पर सोचें, विचार करें और प्रेरणा लें। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

26 अगस्त, 2023

5

साधना का दुरुपयोग न हो

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म।
पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।।
तन मरता तन जन्मता, तन को नश्वर जान।
जो तन से उपरत बने, वो पाता सद्ज्ञान।।

शरीर और आत्मा दोनों भिन्न-भिन्न तत्व हैं। जैसे मकान और मकान में रहने वाले अलग-अलग होते हैं, वैसे ही शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। फर्क केवल इतना है कि मकान में रहने वाला मकान के किसी एक भाग में रहता है जबकि आत्मा पूरे शरीर में विद्यमान है।

शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध हो जाना चाहिए। आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न। जन्म-मरण शरीर का होता है, आत्मा का नहीं। शरीर का निर्माण आत्मा के द्वारा होता है। आत्मा ही शरीर का निर्माण करती है और उसमें वास करती है। वह शरीर के माध्यम से कष्ट, पीड़ा, सुख एवं हर्ष का अनुभव करती है। शरीर को कोई कष्ट नहीं होता, कोई हर्ष नहीं होता।

मुर्दा (मृत) कलेवर के सामने भिन्न-भिन्न प्रकार के आयोजन कर दिए जाएं, नृत्य कर दिए जाएं फिर भी उसके भीतर हर्ष का भाव पैदा नहीं होगा। उसको कितने ही बिजली के झटके लगा दिए जाएं, कितने ही कोड़े लगा दिए जाएं, उसे कोई पीड़ा नहीं होगी। जब तक शरीर में आत्मा विद्यमान है, तब तक

उसे पीड़ा का अनुभव होता है, हर्ष का अनुभव होता है। इसलिए शरीर और आत्मा की भिन्नता समझ लेनी चाहिए और उसकी अनुभूति करनी चाहिए।

जीव के शरीर का निर्माण माता की कुक्षि में होता है। जैसे पहले मकान का ढाँचा खड़ा किया जाता है फिर धीरे-धीरे किचन, बेडरूम, बाथरूम की व्यवस्था होती है वैसे ही माता की कुक्षि में जीव माता का रज और पिता के वीर्य को ग्रहण करके शरीर का ढाँचा बनाता है। जो रज और वीर्य ग्रहण किया गया, वह ओज आहार कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि वह ओज आहार शरीर में जीवनपर्यंत बना रहता है। ललितांग के दृष्टांत से इसको भलीभाँति समझ सकते हैं कि गर्भ में क्या स्थिति होती है।

ललितांग नामक एक श्रेष्ठि पुत्र अश्वारूढ़ होकर नगर भ्रमण को निकला। झरोखे में बैठी महारानी की दृष्टि उस पर पड़ी। उसके सौंदर्य को, गठीले बदन को देखकर महारानी मुग्ध हो गई। उसने अपनी दासी से कहकर उसको ऊपर महल में बुला लिया। ललितांग महल में गया। महारानी के साथ उसकी आमोद-प्रमोद भरी बातें होने लगीं। विषय-विकार की बातें होने लगीं। इतने में द्वार पर दस्तक पड़ी, आवाज आई कि महाराजाधिराज पधार रहे हैं।

महाराज के आने की आवाज से दोनों मुश्किल में आ गए। यदि राजा ने देख लिया तो वे खफा हो जाएंगे। मृत्युदंड से कम सजा नहीं मिलेगी। ललितांग कहता है- मुझे बचाओ। महारानी कहती है मैं कैसे बचाऊँ। फिर महारानी कहती है कि तुम्हें पैखाना में नीचे उतार देती हूँ। ललितांग को रस्सी से बाँधकर नीचे उतार दिया गया। नीचे जगह संकरी थी, ललितांग पाँव सीने से सटा कर बैठ गया।

महाराजाधिराज का आगमन हो गया। उनका शरीर अनुकूल नहीं था, उनको लैट्रिन की हाजत थी। वे अंदर जाकर शौच से निवृत्त हुए। वापस आकर महारानी से आमोद-प्रमोद में लग गए। महारानी ललितांग को भूल गई। उस स्थिति में नौ महीने का समय निकल गया। मल-मूत्र उसके पास से बहता था, वर्षा ऋतु आ गई। उधर उस नाले से वर्षा का पानी निकला इधर रस्सी गल गई। रस्सी से बँधा हुआ ललितांग पानी में गिर गया और बहकर मोरी से बाहर निकल गया। वह घर पहुँचा। नौ महीने बाद वापस आए ललितांग के शरीर की

विचित्र हालत देखकर घरवाले बड़े परेशान हो गए। वैद्य को दिखाया गया। वैद्य ने कुछ औषधियाँ दीं जिनसे वह ठीक हो गया। छह महीने बाद उसका शरीर पुनः तंदुरुस्त हो गया।

एक दिन फिर वह घूमने निकला। महारानी की दृष्टि उसकी ओर गई। वह इशारा करके उसे बुलाने लगी।

ललितांग को क्या करना चाहिए? उसे वापस वहाँ जाना या नहीं?

(कुछ श्रोतागण बोले, जाना चाहिए जबकि कुछ बोले कि नहीं जाना चाहिए)

कोई कह रहा है कि जाएगा, कोई कह रहा है कि नहीं जाएगा। सबके अपने-अपने विचार हैं। बहुतांश का जवाब यह आया कि अब वह नहीं जाएगा और जाएगा तो उसके जैसा कोई मूढ़ प्राणी नहीं होगा। ललितांग तो वहाँ नहीं गया, पर हम पुनः-पुनः माता के गर्भ में जाते रहे हैं। अब भी ऐसी तैयारी तो नहीं लगती वापस गर्भ में नहीं जाना चाहते हो?

बंधुओ! जैसे ललितांग के ऊपर से मल-मूत्र निकल रहा था वैसी ही कुछ स्थिति माता की कुक्षि में जीव की रहती है। बच्चा वहाँ छोटी-सी कोटड़ी में रहता है। माता के गर्भ में सीने से उसके पाँव लगे रहते हैं। माता जो भोजन करती है वही उसको प्राप्त होता है। माता की रस संग्रहणी नाड़ी से उसकी नाभि जुड़ी रहती है और उसको रस के रूप में भोजन प्राप्त होता है। उसी से शरीर का विकास होता है। जन्म के बाद वही बच्चा भूल जाता है कि मेरा जन्म कैसे हुआ। उसकी अनुभूति में नहीं रहता कि मेरा जन्म कैसे हुआ। जब देवता को लगता है कि अब मुझे यह शरीर छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ेगा तो वे बड़े दुखी हो जाते हैं। वे अवधिज्ञान से यह जानकर दुखी होते हैं कि वहाँ मुझे अशौच पदार्थों का सेवन करना पड़ेगा। शरीर बनाने के लिए दूसरा उपाय नहीं है। देव योनि से च्यवकर जीव या तो तीर्यंच योनि में जाएगा या मनुष्य योनि में। दूसरा स्थान है ही नहीं उनके जाने का। जहाँ भी जाएगा वहाँ अशौच पदार्थों का सेवन करना पड़ेगा, क्योंकि उसके पास अन्य कोई उपाय ही नहीं है, किंतु मनुष्य चाहे तो अपने जन्म पर विराम लगा सकता है। पुनः-पुनः गर्भावास में जाना बंद कर सकता है। मनुष्य एक बार ऐसी करनी कर ले तो

धन्य-धन्य हो जाए।

शुक्र और शोणित से यह शरीर निर्मित हुआ है। सात धातुओं की निर्मिति पूर्वक यह शरीर बना है। यह शरीर पुद्गलों की संरचना है। जैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ेगी इस शरीर का कोई उपयोगिता नहीं होगी। इसकी कोई उपादेयता नहीं रहेगी। इसको कोई संभालकर नहीं रखेगा। समेट करके नहीं रखेगा। कोई गाड़ेगा तो कोई जलाएगा। जिसकी जो पद्धति होगी, वैसा करेगा। यह जानने के बाद भी शरीर से ममत्व भाव बना रहता है। वही ममत्व भाव पुनः-पुनः जन्म के लिए प्रेरित करता है। पुनः-पुनः जन्म दिलाता रहता है। मृत्यु के मार्ग से परभव में भटकाता रहता है।

ज्ञानीजन इस रहस्य को जान लेते हैं। मूर्ख-अज्ञानी इस भेद को जान नहीं पाता, इस रहस्य को जान नहीं पाता।

एक पुस्तक में मैंने पढ़ा कि पति भोजन करने बैठा। पत्नी ने उसे भोजन परोसा। सब्जी में नमक नहीं था, सब्जी थोड़ी फीकी थी, अलूणी थी। पति को गुस्सा आ गया। वह थाली छोड़ उठा और पत्नी को चाकू घोंप दिया। ऐसी अनेक घटनाएं घटती रहती हैं। ऐसी घटनाएं घटने का मुख्य कारण है अज्ञानता।

हमारा जैन समाज इस मामले में बचा हुआ है। किसी को चाकू घोंपने की हमारे में हिम्मत नहीं होगी। हिम्मत तो क्या, हमारे भीतर कभी ऐसा विचार भी नहीं आता। हमने कभी ऐसा काम ही नहीं किया तो ऐसे विचार पैदा होंगे ही क्यों। अच्छे संस्कारों का परिणाम ही कह सकते हैं। हमने जैन कुल में जन्म लिया। जन्म से हमें ऐसे ही संस्कार मिले हैं। ऐसे दुष्कृत्य सहसा हमसे नहीं होंगे। आप समझ लीजिए जिंदगी क्या है-

मानव तन का मोल प्यारे, इक कौड़ी...
डब्बा तेरा बड़ा सुहाना, आभूषण का नहीं ठिकाना,
क्या उसका है मोल, प्यारे इक कौड़ी...

जौहरी की दुकान पर जाकर कोई आभूषण लेता है तो जौहरी मखमली कपड़े से सजी हुई डिब्बी के भीतर आभूषण को सजाकर देता है। कीमत आभूषण की है या डिब्बी की?

(श्रोतागण बोले- कीमत आभूषण की है)

आपने दो-चार लाख रुपये आभूषण के चुकाए और आभूषण को डिब्बी में पैक कर दिया गया। खाली डिब्बी दे देता तो उसकी क्या कीमत होती। हमें हमारा शरीर बड़ा सुहाना लगता है। बड़ा रमणीय लगता है। भव्य लगता है। हम अपने शरीर पर मुग्ध हो जाते हैं कि इतना सुंदर शरीर मिला है, पर शरीर से आत्मा निकल जाए तो उसका क्या मोल रहेगा! जैसे बिना आभूषण के डिब्बी का मूल्य नहीं है वैसे ही आत्मा के बिना शरीर मूल्यहीन है।

इस शरीर में रहते हुए दो उपाय हो सकते हैं। एक उपाय है पुनः-पुनः जन्म-मरण करना। कभी नरक गति में तो कभी देव गति में चलते, कभी मनुष्य बनेंगे तो कभी पशु-पक्षी आदि। इस प्रकार बार-बार जन्म-मरण करते रहेंगे। दूसरा उपाय है, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना करते हुए अपनी मंजिल को प्राप्त करना। अपने लक्ष्य को प्राप्त करना। यह सौभाग्य केवल और केवल हमें ही प्राप्त है अर्थात् मनुष्य को ही प्राप्त है।

भगवान ने मोक्ष प्राप्ति के चार दुर्लभ अंग बताए हैं। सबसे पहली आवश्यकता मनुष्य तन की होती है। यदि मनुष्य तन नहीं है तो आगे शून्य है, मंजिल नहीं मिलेगी। मोक्ष प्राप्ति के लिए पहली आवश्यकता है मनुष्य जीवन। वह हमें प्राप्त हो चुका है। दूसरी आवश्कता है, वीतराग वाणी श्रवण होना। हमें सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीसरा अंग है श्रद्धा। '**सद्धा परमदुल्लहा**' यानी श्रद्धा बड़ी दुर्लभ है। बहुत कठिन है। श्रद्धा हो जाती है तो तीन अंग प्राप्त हो जाते हैं।

(किसी व्यक्ति का फोन बजा)

एक मोबाइल ने सबका ध्यान बँटा दिया। जो ध्यान सुनने में रहना चाहिए था, वह बँट गया। थोड़े समय में मोबाइल इतना बिगाड़ कर सकता है तो निरंतर पास रहने पर कितना बिगाड़ करेगा।

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँसने की बात नहीं है। इस पर शोध हुआ है। शोध के अनुसार नीचे के पॉकेट में मोबाइल रेगुलर बना रहता है तो किडनी को बड़ा खतरा होता है। ऊपरी पॉकेट में निरंतर मोबाइल रहने से हार्ट को तकलीफ होती है। हार्ट को

खतरा होता है। उससे (मोबाइल से) निकलने वाली किरणें बड़ी भयंकर होती हैं। आपने देखा होगा, सुना होगा कि मोबाइल टॉवर के आस-पास से छोटे-छोटे जीवों, चिड़ियों और जानवरों का खातमा हो गया। शोध में यह भी पता चला है कि मोबाइल टॉवरों से निकलने वाली किरणें उसके नजदीक रहने वालों के शरीर को हानि पहुँचा रही हैं।

एक बात बहुत स्पष्ट है कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने केवल सुविधाएं नहीं दी हैं, बहुत-सी दुविधाएं भी दी हैं। सुविधाओं का सही उपयोग नहीं करने से दुविधा बन जाती है। पहले बिना मोबाइल के भी काम चलता था। लैंडलाइन होने से भी काम चलता था। मोबाइल का दुरुपयोग हो रहा है या सदुपयोग?

(श्रोतागण बोले- दुरुपयोग हो रहा है)

अमूमन बहुत सारी बातें व्यर्थ में होती हैं। पता नहीं, वॉट्सएप आदि कितने ही प्रकार के एप निकल गए हैं। लोग हानि को समझ नहीं पा रहे हैं। उनके पीछे दीवाने हो रहे हैं। इसका मतलब हुआ कि हम शरीर की प्रधानता में जी रहे हैं। मोबाइल से होने वाली हानि की ओर से हमारी आँखें बंद हो गई हैं। जरूरत एक बात है, अनावश्यक उपयोग दूसरी बात है। अनावश्यक उपयोग के लिए भगवान महावीर का निषेध है। भगवान ने इसे अनर्थ दंड बताया है।

व्यक्ति को रसोई बनानी पड़ रही है, खाना बनाना पड़ रहा है, यह उसकी लाचारी है, विवशता है। अनावश्यक किसी भी चीज का दुरुपयोग करना अनर्थ दंड है। उससे विशेष कर्मों का बंध होगा।

हमें जैन कुल मिला है, समझने की आवश्यकता है। हमारी श्रद्धा बढ़नी चाहिए। चौथा दुर्लभ अंग है संयम में पराक्रम, पुरुषार्थ।

पराक्रम और पुरुषार्थ क्यों बताया?

बहुत-से लोग या अनेक व्यक्ति साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं, किंतु उनमें जो पुरुषार्थ होना चाहिए, जो पराक्रम प्रकट होना चाहिए, वह नहीं करते। पराक्रम प्रकट नहीं किया गया तो मंजिल नहीं मिलेगी। मंजिल के लिए संयम में पुरुषार्थ करना पड़ेगा। अहिंसा की आराधना करनी पड़ेगी।

'सव्वेसिं जीवियं पियं'

सभी को जीवन प्रिय है। इसलिए ऐसा लक्ष्य होना चाहिए कि मेरे कारण से किसी भी जीव की विराधना नहीं हो। ऐसा सुंदर लक्ष्य बनाने पर मंजिल दूर नहीं है। हमारी नासमझी से ही मंजिल दूर बनी हुई है। समझदारी मंजिल को नजदीक कराने वाली बनेगी।

अभी न्यायाधीश कुलदीप जी आपके सामने बोल गए। इनको आश्चर्य हुआ कि दरवाजे के सामने आते ही उनसे मोबाइल ले लिया गया। इसका मूल कारण है कि साधना में डिस्टर्ब नहीं होना चाहिए। सुनने में बाधा नहीं पहुँचनी चाहिए। यहाँ व्यक्ति का लक्ष्य होता है कि जिस माहौल में जा रहे हैं, वहाँ सभी को समाधि मिले। आप लोग निरंतर सुनने के आदी हैं इसलिए बिना माइक के सुनने में आपको कठिनाई नहीं होती। शोरगुल में जीने वालों के लिए बिना माइक के आवाज सुनना दुष्कर हो जाता है, कठिन हो जाता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में माइक की आवश्यकता होनी ही नहीं चाहिए। लोग कम सुनें या ज्यादा, उससे मतलब नहीं है। माइक में बोलने से जो भी किरणें विकीर्ण होती हैं, वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। निरंतर माइक में बोलने वाले को बार-बार पानी पीना पड़ता है। उसका गला सूखने लगता है। उससे भी बहुत बड़ी हानि होती है। सुविधा के लिए लोग उपयोग कर लेते हैं, किंतु हमें सुविधा के बजाय चैलेंज स्वीकार करना है। ए.सी. में बैठने वाले को यहाँ बैठाएंगे तो गरमी लगेगी। निरंतर ए.सी. में बैठने वालों का शरीर कष्टों, कठिनाइयों को झेलने में समर्थ नहीं हो पाता, कमजोर हो जाता है। अपने शरीर की क्षमता को बढ़ाना, विल पॉवर को बढ़ाना है, प्रतिरोधात्मक शक्ति को बढ़ाना है तो ए.सी. से दूर रहना होगा।

ए.सी. में बैठने वालों को रोग ज्यादा होता है या जमीनी काम करने वालों को? ज्यादा कौन बीमार होते हैं, ए.सी. वाले या बाहर काम करने वाले?

(श्रोतागण बोले- ए.सी. में बैठने वालों को रोग ज्यादा होता है)

ए.सी. में बैठने वाला यह तो नहीं सोचता कि बीमार हो जाएंगे तो हो जाएंगे। डॉक्टर क्या काम आएगा। इतने-इतने लोग डॉक्टरी पढ़ रहे हैं, डॉक्टर बने हैं उनको काम भी तो मिलना चाहिए। उनको रोजगार भी तो मिलना चाहिए

अन्यथा उनका उपयोग क्या होगा।

बंधुओ! मैं यह मानता हूँ कि एकदम न आप ए.सी. का त्याग कर सकते हो न मोबाइल का, न बिजली का त्याग कर सकते हो और न ही पंखे का, किंतु इतना हो सकता है कि उनका दुरुपयोग नहीं हो। जहाँ अतिआवश्यक हो, उसके अतिरिक्त उनका उपयोग नहीं करें। ऐसा न हो कि एक तरफ पंखा चल रहा है और दूसरी तरफ चादर ओढ़ कर बैठे हैं। शरीर को हवा की आवश्यकता नहीं है, किंतु बस, चल रहा है तो चल रहा है। हम सुविधाओं के बजाय स्वास्थ्य पर ध्यान दें। स्वास्थ्य पर ध्यान देंगे तो लंबे समय तक शरीर कष्टों को झेलने का सामर्थ्य रख पाएगा अन्यथा बहुत जल्दी सुकुमाल बन जाएंगे। उस हालत में साधना की तरफ आगे नहीं बढ़ पाएंगे और पुनः जन्म, पुनः मरण होता रहेगा।

सुनंदा का चारित्र सुन रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
बहन-बहनोई दोनों आए, दोनों उससे बात चलाए,
फिर मुद्दे की बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

कहानी में अब तक बताया गया है कि जब सुनंदा विजय की बात मानने को तैयार नहीं हुई तो विजय को गुस्सा आ गया। गुस्से में उसने अपने बहन-बहनोई को समाचार कर दिया कि मैं रोज-रोज की बक-बक सहन नहीं कर सकता। मेरे पास अब एक ही उपाय बच गया है, तलाक, तलाक और तलाक।

जज साहब आज यहाँ मौजूद हैं। पता नहीं इनके पास तलाक के कितने केस आते होंगे। कल ही मैंने बताया था कि शराब के नशे में बेटे ने अपने पिता की हत्या कर दी। पिता ने समझाने की कोशिश की और बेटे ने उसकी हत्या कर दी। ऐसे में समाज कैसे सुरक्षित रह सकता है! ऐसे अपराध बढ़ेंगे तो समाज सुरक्षित नहीं रह पाएगा। अपराध बढ़ने का मूल कारण नशा है। नशे से आदमी बेभान हो जाता है और जो नहीं करने योग्य कार्य होता है वैसा कार्य भी कर गुजरता है।

न्यायालय में लाखों केस वर्षों से पड़े हैं। क्या करें न्यायाधीश! जज

भी क्या करें! बार-बार पेशी लेने से समय ज्यादा होता है और सुनवाई भी नहीं हो पाती। इस तरह केस लंबित होते चले जाते हैं।

एक बात ऐसी सुनने में आई कि दादा के समय के केस का फैसला पोते के समय में आया। वह फैसला कितना सही होगा यह तो ज्ञानियों के ज्ञान का विषय है, क्योंकि तब तक सारी स्थिति बदल चुकी होती है। लोग परेशान हो चुके होते हैं।

पहले हाथोंहाथ जजमेंट दिया करते थे। पंचायत में ही काम निपटा दिया जाता था। समाज की व्यवस्था होती थी। समाज के पंच बैठकर निर्णय करते थे। बहुत सारे काम न्यायालय जाने के पहले ही निपट जाते थे। अब तो छोटी-छोटी बात के केस हो जाते हैं।

जैसे ही विजय के बहन-बहनोई को समाचार मिला, वे हड़बड़ा गए। तलाक इतना आसान काम नहीं है। गुस्से में, अहंकार में, कषाय में लोग तलाक की बात करते हैं। तलाक के बाद की स्थिति सताने वाली होती है। तलाक लेने वालों के सामने क्या-क्या कठिनाई नहीं आती।

सरकार ने समझाने के लिए एक नया प्रयोग किया। प्रयोग हुआ कि तलाक वालों को कम-से-कम छह महीने का समय दिया जाए ताकि वे परस्पर समझने की कोशिश करें। कोई माध्यम से उनको समझा सके ताकि तलाक की स्थिति नहीं बने, पर यह स्थिति बनती क्यों है? इसका मूल कारण है इगो। इगो से ये सारी चीजें पनपती हैं। कानून बन जाते हैं और कानूनों का दुरुपयोग भी बहुत होता है।

कल ही अखबार में दहेज कानून के बारे में बताया गया था। दहेज कानून महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाया गया था, किंतु महिलाओं ने उसको हथियार बना लिया। दहेज के दो पार्ट थे- देना और लेना। दहेज देना भी अपराध है और लेना भी अपराध है। दहेज माँगने की बात अपराध की श्रेणी में आ गई। दहेज देना भी अपराध है। दहेज देने वाले पर मेरे खयाल से मुश्किल से पाँच-सात केस हुए होंगे जबकि दहेज माँगने के हजारों केस मिल जाएंगे। दहेज कानून को हथियार बना लिया जाता है। कहते हैं कि दहेज के लिए ससुराल वाले प्रताड़ित कर रहे हैं।

एक सर्वे में बताया गया है कि 80 प्रतिशत लोगों को बिना खोजबीन के पुलिस ने अरेस्ट कर लिया। लड़की के कहने से, पत्नी के कहने पर दोष लगा दिया जाता है। 80 प्रतिशत लोग निरपराध पाए गए। 90 प्रतिशत केस बिना सोचे-समझे लगाए जाते हैं। बिना सोचे-समझे का मतलब है, जिनका मूल कारण कम होता है, इगो ज्यादा होता है। कई न्यायाधीश इसे अनुभव करते हैं। न्यायालय ने कई जगह फटकार भी लगाई और यह भी कहा कि यह कानून महिलाओं के लिए बनाया गया कि वे पुरुषों से प्रताड़ित नहीं हों किंतु आज कानून उलटा हो गया। महिलाओं के बजाय पुरुष महिलाओं से प्रताड़ित हो रहे हैं। मेरे खयाल से पुरुष महिलाओं से डर-डरकर रहते हैं। भय खाते हैं कि कल को कुछ केस-वेस न हो जाए।

विजय के बहन-बहनोई आ गए। सुनंदा से बात करने लगे कि भाभी! तुम्हारी तबीयत कैसी है, विजय की तबीयत कैसी है। तुमको बहुत कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, तुम्हारे पर तो बहुत लोड है। सुरेश को भी तुम निभा रही हो, नहीं तो उसका निर्वाह कैसे होता। तुम्हारे जैसी भाभी सबको मिल जाए तो परिवार का कायाकल्प हो जाए। इस तरह धीरे-धीरे बात करते हुए उन्होंने कहा, भाभी! बाजार में चर्चाएं हो रही हैं कि आपमें और विजय में अनबन है। आप दोनों की आपस में बनती नहीं है। दोनों की यह खटपट घर से बाहर जाती है तो अच्छा नहीं लगता। इसका क्या कारण है, ऐसा क्या हो गया? तुम्हें क्या तकलीफ है?

सुनंदा ने कहा, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। यदि आपके भाई साहब को कुछ तकलीफ हो तो उन्हीं से पूछ सकते हैं। विजय के कानों में ये शब्द पड़े तो उसको गुस्सा आ गया। उसने कहा, बहन! छोड़ इसको अभी। अभी यह सुनने वाली नहीं है। मैंने बहुत समझाया, किंतु इसमें तो अक्ल ही नहीं है। मानो सुरेश से ही इसकी शादी हुई हो, उसके ही पीछे लगी रहती है। मेरी तरफ ध्यान ही नहीं रहता।

विजय की बात सुनकर सुनंदा काँप गई कि मुझ पर गलत इल्जाम लगाया जा रहा है। सुनंदा ने जवाब दिया, मैंने सुरेश से नहीं, आपसे शादी की है। मैंने आपका क्या खयाल नहीं रखा, बताइए? मैंने माँजी को जुबान दी है, इसलिए सुरेश की भी देख-रेख करती हूँ।

उधर विजय का गुस्सा सातवें आसमान को चढ़ रहा था। वह सुनने को तैयार नहीं हो रहा था। बहन-बहनोई ने समझाया कि ऐसे काम नहीं चलता। परिवार चलाने के लिए एक-दूसरे को समझकर चलना होता है। तुम समझने की कोशिश करो।

आगे वे क्या समझते हैं, क्या होता है यह समय के साथ ही सुन पाएंगे, किंतु इतना अवश्य है कि दोनों हाथों से ताली बजती है। दो पहियों से गाड़ी सही चलती है। एक पहिया ट्रेक्टर का और दूसरा साइकिल का होगा तो गाड़ी लंबे समय तक नहीं चल पाएगी।

ज्यादा तलाक किनका हो रहा है? पढ़े-लिखे लोगों में ज्यादा तलाक होता है या अनपढ़ों में? जज साहब! ज्यादा तलाक किनका होता है?

(जज साहब बोले- पढ़े-लिखे लोगों के ज्यादा होते हैं)

पढ़ी-लिखी बहनें जब पहले जानती हैं कि दहेज की माँग हो रही है तो ऐसे लड़कों से शादी क्यों की, क्या आवश्यकता थी शादी करने की। लोगों ने पढ़-लिख तो बहुत लिया, किंतु मैनेजमेंट नहीं पढ़ पाए। मैनेजमेंट नहीं पढ़ पाने से छोटी-छोटी बातें दिमाग में घर कर लेती हैं, मन में इगो रहता है कि मैं पढ़ी-लिखी हूँ। वह इगो कहीं-न-कहीं जाकर टकराता है। व्यक्ति सोचता है कि मेरी बात रहनी चाहिए। मैं जैसा चाहूँ, वैसा होना चाहिए। थोड़ी-सी दखल होने पर तलाक की बात कह देती है। तलाक देना बहुत आसान काम समझ लिया है। थोड़ा कुछ होने पर बहू बोल देती है कि मैं कोर्ट में केस करूंगी, एफआईआर दर्ज करवाऊँगी। पीहर वालों का भी कभी सहयोग मिल जाता है तो बंदर के हाथ तलवार आ जाती है।

बंधुओ! समाधि में जीना चाहते हैं तो गुस्सा करना छोड़ दें। इगो छोड़ दें। एक-दूसरे की बात शांति से सुनें। उपाध्यायश्री जी बता रहे थे, कम्युनिकेशन खराब नहीं होना चाहिए। एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करेंगे और समझकर समाधान ढूँढेंगे तो समाधान मिलेगा। क्रोध-अहंकार में समाधान नहीं मिलेगा। परिवार में शांति रहेगी तो सभी सुखद अनुभव करेंगे और जितना संक्लेश होगा उतने ही दुखी होंगे। हमने जैन कुल में जन्म लिया है। हमारा कुछ दायित्व बनता है। कुछ जिम्मेदारी होती है। अपनी जिम्मेदारी का

निर्वाह करते हुए जीवन को सही तरीके से आगे बढ़ाने का लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

महासती श्री स्तुति श्रीजी म.सा. की आज 15 की तपस्या है। सरिता जी मुणोत की आज 59 की तपस्या है। सुनीता जी आँचलिया की आज 29 की तपस्या है। मासखमण से एक कदम दूर हैं। और भी कई भाई-बहनों में जो तपस्याएं चल रही हैं आपको समय के साथ ज्ञात हो पाएंगी।

27 अगस्त, 2023

साधुमार्गी पब्लिकेशन

6

मूर्ख मन भमता रहे

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म।
पुण्य चरण गुरु शरण से, प्रकटा विरक्ति मर्म।।

वैराग्य भाव चिंतन-मनन से प्रकट हो पाता है। जगत के स्वरूप का बोध हो पाता है, सृष्टि की रचना का कारण जब ज्ञात होता है तब मालूम पड़ता है कि शरीर के प्रति लगाव, शरीर पर अनुराग, शरीर पर अनुरक्ति ही भटकाती है। शरीर क्या है?

शरीर पुद्गलों की एक संरचना है। शुक्र और शोणित से इस शरीर का निर्माण हुआ। इस पर विचार करते हुए शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध जगता है। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, यह बोध हो पाता है।

'मन मूरख उसमें रमे, हुई न जीवन भोर'

मन शरीर में, पुद्गलों में रमता रहता है, खुशियां मनाता रहता है तो जीवन की जो भोर होनी चाहिए, जो सुबह होनी चाहिए, वह नहीं हो पाती है। जीवन की सुबह का मतलब है, आत्मबोध जागृत होना, आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान होना। यह ज्ञान होना कि मैं कौन हूँ।

बहुत बार हम प्रश्न करते होंगे कि मैं कौन हूँ किंतु समाधान नहीं मिलता। कई बार घर में रखी हुई चीज भी एक बार खोजने पर नहीं मिलती है, किंतु खोजते-खोजते एक दिन मिल जाती है। ऐसे ही अनादिकाल से हमारा

आत्मभाव भटका हुआ है। वह शरीर में रमा हुआ है। उसी में उसको आनंद आता है। शरीर में रमने का मतलब है, खाने-पीने में, मौज-मस्ती में मन को लगा लेना। दुनिया में अधिकांश व्यक्ति खाने-पीने और मौज-मस्ती में लगे रहते हैं। व्यक्ति सोचता है कि अच्छा खा-पीकर, बढ़िया पहनकर और अच्छी जगह रहकर मनुष्य जीवन को सफल कर लिया। व्यक्ति को जितनी ज्यादा सुविधाएं मिलती हैं वह उतना ही गर्व करनेवाला हो जाता है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पूर्व जन्म में मुनि था। देवलोक जाने से पहले मुनि था। उस समय निदान किया और निदान के कारण चक्रवर्ती बन गया। साधु जीवन से मोक्ष मिलता है, दिव्य देवलोक प्राप्त होता है। निदानकृत होने से उसका मोक्ष रुक गया, वह चक्रवर्ती बन गया। उसका पूर्व जीवन का सहोदर भाई चित्त मुनि बोध देने के लिए उपस्थित हुआ तो ब्रह्मदत्त कहता है, मुनिराज! आप जो बात कह रहे हैं उसे मैं समझ रहा हूँ। यह शरीर नश्वर है और कामभोग भी नश्वर है, मैं समझ रहा हूँ, किंतु मेरे मन में इनसे विरक्ति का भाव पैदा नहीं हो रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि यह पाप का मूल है, आसक्ति नहीं होनी चाहिए। इसके बावजूद मैं ये सब छोड़ने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ।

मुनि ने काफी समझाया, बहुत प्रयत्न किया। ब्रह्मदत्त समझ भी रहा था, उसके बावजूद छोड़ने में समर्थ नहीं हो पा रहा था। नहीं छोड़ने के पीछे कारण था निदानकृत होना। कामभोग के निदानकृत को श्रावक जीवन, साधु जीवन प्राप्त होना बहुत मुश्किल है। यदि कोई श्रावक बनने का निदान* कर लेगा तो वह श्रावक बन जाएगा। साधु बनने का कोई निदान कर ले कि मेरी क्रियाओं का इतना लाभ हो कि आने वाले जन्म में मैं साधु बनूँ। उन क्रियाओं का यदि पुण्य एकत्रित हुआ है तो साधु बन सकता है। पर वह उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी पर आरोहण नहीं कर सकता। उसको केवलज्ञान नहीं हो सकता।

यह बात सामने आने पर व्यक्ति के मन में प्रश्न खड़ा होता है कि यदि श्रावक बनने का निदान किया जा सकता है, साधु बनने का निदान किया जा सकता है तो सर्वज्ञ होने का निदान क्यों नहीं किया जा सकता? श्रावक बनने

---

* निदान करना यानी ऐसा विचार करना कि मेरी धार्मिक क्रियाओं का यदि फल हो तो मुझे अगले जन्म में अमुक अवस्था प्राप्त हो। 'निदान करना' दोषपूर्ण प्रवृत्ति है।

का निदान किया तो श्रावक बनने का अवसर मिला। साधु जीवन का निदान किया तो साधु बनने का मौका मिला। चक्रवर्ती का निदान किया तो चक्रवर्ती बनने का मौका मिला। वासुदेव का निदान किया तो वासुदेव बनने का अवसर प्राप्त हुआ। अत: निदान ही करना है तो सर्वज्ञ बनने का निदान करना ही उचित है। किंतु सर्वज्ञ बनने का निदान नहीं होता। इतनी सामर्थ्य, पुण्य संचित नहीं हो पाती है कि सर्वज्ञ बनने की संपदा प्राप्त हो जाए। बैंक में जितना बैलेंस होगा उतना ही काम आएगा।

एक समाचार सुनने को मिला कि एक व्यक्ति ने किसी मंदिर ट्रस्ट को लाखों रुपये का चेक काट दिया किंतु उसके बैंक (अकाउंट) में केवल 17 रुपये निकले। क्या ट्रस्ट को लाखों रुपये का भुगतान हो पाएगा या चेक वापस लौट आएगा?

(श्रोतागण बोले- चेक वापस लौट आएगा)

वैसे ही हमारे खाते में 17 रुपये हो और सर्वज्ञ जैसा एक लाख रुपये चाहें, निदान करें तो निदान फलेगा क्या?

नहीं फलेगा, क्योंकि हमारे पोते इतने रोकड़े नहीं हैं। बैलेंस नहीं है। इसलिए सर्वज्ञ का, वीतरागता का निदान नहीं होता। ज्यादा-से-ज्यादा साधु बनने तक निदान होता है। वह छठा-सातवाँ जीवस्थान प्राप्त कर लेगा, किंतु उस भव में वीतराग नहीं बन पाएगा, सर्वज्ञ नहीं बन पाएगा।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कामभोगों का निदान करके चक्रवर्ती बना था। इसलिए वह चाहकर भी साधु जीवन स्वीकार करने को तैयार नहीं हो पा रहा था। वैसी भावना ही नहीं बन पा रही थी।

हमारी भावना बनने में क्या रुकावट है? कई लोग कहते हैं, म.सा.! सब कुछ ठीक है, किंतु भावना नहीं बन रही है, वैराग्य नहीं आता है। क्यों नहीं आता वैराग्य! क्यों नहीं बनती भावना! क्या कभी सोचा कि हमारे भीतर वैराग्य क्यों नहीं आ पा रहा है! वैराग्य आ सकता है चिंतन-मनन एवं अनुशीलन करने से।

किसी विषय पर गहरा चिंतन-मनन करो। अनुभूति करो। अनुभूति के साथ गहराई में उतरने पर वैराग्य प्रकट होता है। शरीर की समीक्षा कर लो कि

जन्म के समय शरीर कैसा था, बचपन में कैसा रहा, जवानी में इसमें क्या परिवर्तन आया और बुढ़ापे में इसकी रंगत कैसी बन गई। एक दिन यह शरीर चला जाएगा।

करकंडु सम्राट के लिए एक सांड का शरीर वैराग्य का कारण बन गया। उन्होंने एक सांड को अपनी गोशाला में रखा था। उसकी दयनीय हालत देखकर उन्होंने अपने दीवान से कहा, अहो! सांड के शरीर की यह हालत! दीवान जी ने कहा, राजन! शरीर की तो यह हालत होती है। हमारा मन माने या नहीं माने, किंतु शरीर ढलता है। जवानी में जो जोश रहता है वह बुढ़ापा आते-आते मंद पड़ जाता है। जवानी में व्यक्ति ने कभी सोचा होगा कि मैं भी दीक्षा लूँगा और सोचते-सोचते बुढ़ापा आ गया। अब दीक्षा लेने का मन भी हो रहा है, किंतु शरीर साथ नहीं दे रहा है। इंद्रियां शिथिल हो गईं। सुनाई कम देने लगा। उठने-बैठने में तकलीफ होने लगी। कभी कमर में दर्द होता है तो कभी घुटनों में। अब चाहते हुए भी दीक्षा नहीं ले पा रहा है। अब उसके मन ने ही उत्तर दे दिया। अब सोच में बदलाव आ गया कि इस उम्र में साधु बनने पर सम्यक् आराधना नहीं कर पाऊँगा। जैसी चाहिए, वैसी साधना कर नहीं पाऊँगा, अपितु दूसरे साधुओं पर भारभूत बन जाऊँगा। दूसरों की सेवा करने की बजाय उनको मेरी सेवा करनी पड़ेगी। कुल-मिलाकर वह अपने उत्साह को, अपने पुरुषार्थ को जगा नहीं पाता है।

मोह कर्म के क्षयोपशम से वैराग्य भावना बनती है। चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम हो तो दीक्षा की भावना पैदा होती है। उत्साह नहीं बनता, पुरुषार्थ नहीं होता, थोड़ा-सा मन ऊँचा उठता है और वापस गिर जाता है, यह अंतराय कर्म के योग से होता है। अंतराय कर्म प्रबल होता है तो भावना होते हुए भी वह क्रियान्वित नहीं कर पाता है।

'मन मूरख उसमें रमे, हुई न जीवन भोर'

मन उसमें रमता रहता है। किसमें रमता रहता है? शरीर में रमता रहता है। शरीर की सुंदरता को बनाए रखने के लिए उपाय सोचता रहता है।

एक व्यक्ति एक स्त्री पर मुग्ध हो गया। जिस स्त्री पर वह मुग्ध हुआ संयोग से कुछ समय के बाद उसे कैंसर हो गया। उसके शरीर में जगह-जगह

घाव हो गए। घर वालों ने उसे छोड़ दिया। वह एक सड़क के किनारे पड़ी हुई थी। उसको देखकर उस व्यक्ति ने सोचा कि ऐसा कैसे हो गया। अब उसके प्रति उस व्यक्ति के मन में कितना राग भाव रहेगा? उसको पाने की इच्छा कितनी रहेगी?

(श्रोतागण बोले- नहीं रहेगी)

क्यों, क्या हो गया?

एक दिन मैंने सुभद्रा की बात बताई थी। बुद्धदास ने उसको देखकर मन में विचार किया कि मुझे इसको पाना है, अपनी पत्नी बनाना है। उसने धार्मिक क्रियाएं की, किंतु वह केवल दिखावा था। उसका लक्ष्य था सुभद्रा को पाना। वह सुभद्रा के शरीर के पीछे पागल हो गया। मदनरेखा के रूप को देखकर मणिरथ भी पागल हो गया था। उसने यह भी नहीं सोचा कि यह मेरे छोटे भाई की पत्नी है। बेटी के समान है। शरीर की चमड़ी लोगों को आकर्षित करनेवाली बन जाती है। वैसी अवस्था में व्यक्ति के जीवन की भोर नहीं हो पाती है। उसकी सुबह नहीं हो पाती है अर्थात् आत्मज्ञान प्रकट नहीं हो पाता है। वह अज्ञान में, अंधेरे में भटकता रहता है।

शरीर को ही सबकुछ समझ लेना अज्ञान है। अज्ञान में आदमी भटकता रहता है। अज्ञानी व्यक्ति मानता है कि यह सुंदर शरीर मेरा है। ज्ञानी की सोच उसमें भिन्न होती है। वह सोचता है-

'जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय'

जब शरीर भी आपका नहीं है तो दुनिया आपकी कैसे हो पाएगी! शरीर भी अपना नहीं है। शरीर भी छूटेगा। रोते-रोते शरीर छूटेगा, बेहोशी में शरीर छूटेगा। छोड़ना नहीं चाहेंगे, फिर भी छूटेगा। शरीर को छोड़ना चाह रहे हैं या छूटेगा?

(श्रोतगण बोले- छूटेगा)

आत्मज्ञान होने पर व्यक्ति स्वयं शरीर छोड़ने को तैयार हो जाता है। वह शरीर को त्याग देता है। संलेखना करता है, संथारा करता है। सोचता है कि अब यह शरीर मेरा नहीं है। मैंने इसकी बहुत साज-संभाल कर ली। जब तक इससे मुझे ज्ञान, दर्शन, चारित्र का लाभ हो रहा था, जब तक ज्ञान, दर्शन,

चारित्र की आराधना हो रही थी, तब तक मैंने इसका पोषण किया। इसका लालन-पालन किया। अब इससे विशेष साधना होने वाली नहीं लग रही है। ऐसा समझकर व्यक्ति संथारा स्वीकार कर लेता है।

पहले संत महात्मा पादपोगमन संथारा किया करते थे। जैसे गिरा हुआ पेड़ पड़ा रहता है, वैसे ही बैठे या सोए जिस प्रकार से हैं उसी प्रकार से रहना। यदि निवृत्ति के लिए जाना पड़े तो यह नहीं कि वापस आकर दूसरी पोजीशन में बैठ गए। जिस पोजीशन में पहले थे वापस आकर उसी पोजीशन में बैठेंगे या सोएंगे। चाहे सीधा हो, करवट हो या कैसा भी हो। शरीर की शुश्रूषा भी नहीं करना। शरीर का कोई भी परिकर्म नहीं करना। ऐसा नहीं की दर्द हो गया तो दवा लगा ली। ऐसा कोई भी उपक्रम नहीं करना।

सनत्कुमार चक्रवर्ती को सोलह महारोग पैदा हो गए, किंतु शरीर से विरक्ति हो गई। उन्हें वैराग्य आ गया। इलाज के लिए वैद्य के रूप में देवता आए, किंतु उन्होंने कह दिया कि मुझे शरीर का इलाज नहीं कराना है। इस बीमारी ने मुझे जागृत किया है, मैं इसका इलाज नहीं कराना चाहता हूँ। जो शरीर से उपरत हो जाता है उसको आत्मज्ञान पैदा होता है।

शरीर का उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लिए उसकी आवश्यकता है। उससे बढ़कर उसे महत्त्व नहीं देना। उससे बढ़कर महत्त्व दिए जाने का मतलब है कि शरीर की तरफ ध्यान ज्यादा और आत्मा की तरफ कम।

सुनंदा का कर्तव्य के प्रति ध्यान है। वह पूरी मेहनत करती है। विजय और सुरेश का काम करना, घर का काम करना। ऐसा नहीं है कि काम के लिए नौकर या नौकरानी रख ले। सारा काम वह अपने हाथों से करती थी। वैसे अभ्यास से सारी चीजें सार्थक हो जाती हैं। सफल हो पाती हैं। अभ्यास रहे तो कोई दिक्कत नहीं होती।

एक सम्राट गाय के नवजात बछड़े को लेकर आए और महारानी से कहा, आप इसे उठाइए। महारानी ने बछड़े को उठाने का प्रयत्न किया, किंतु उठा नहीं पाई। सम्राट ने अपने हाथों से उठाया और महारानी की तरफ देख मुस्कुराए। महारानी के मन में थोड़ी हीन भावना आ गई कि मैं बछड़े को उठा

नहीं पाई, मेरा शरीर इतना कोमल और कमजोर है। शरीर में इतनी भी ताकत नहीं है।

बात आई-गई हो गई, किंतु महारानी ने मन में एक संकल्प कर लिया कि बछड़े को उठाकर रहूंगी। महारानी रोज गोशाला में जाकर उस बछड़े को उठाने का प्रयत्न करने लगी। धीरे-धीरे वह बछड़े को उठाने में समर्थ हो गई। वह रोज अभ्यास करती रही। लगभग तीन वर्ष तक उसका अभ्यास चलता रहा। तीन वर्ष में बछड़ा हट्टा-कट्टा हो गया, फिर भी महारानी उसे उठाने में समर्थ थी।

महारानी ने एक दिन सम्राट से कहा कि नाथ! चलो गोशाला चलते हैं। वह राजा को गोशाला लेकर आई और उनसे उसी बछड़े को उठाने के लिए कहा। सम्राट ने उठाने की कोशिश की, किंतु उठा नहीं पाए। महारानी ने एक झटके में उठा लिया।

क्यों उठा पाई महारानी? कैसे उठा लिया? जो नवजात बछड़े को उठाने में समर्थ नहीं थी उसने तीन साल के हट्टे-कट्टे बछड़े को कैसे उठा लिया?

रोज अभ्यास करने से वह उठाने में समर्थ हो पाई। इसलिए नीति में एक बात कही गई है- '**अभ्यासेन क्रिया: सर्वा:**' अर्थात् अभ्यास से सारी क्रियाओं को सिद्ध किया जा सकता है। निरंतर अभ्यास सफलता दिलाने वाला बनता है।

हमारा अभ्यास क्या हो रहा है? सामायिक करने वाले रोज कर रहे होंगे, लेकिन कुछ लोग सदैया नहीं कदैया[+] होते हैं। जब म.सा. गाँव में आते हैं तो सामायिक कर लेते हैं और म.सा. गाँव में नहीं रहते तो सामायिक नहीं होती।

हम खाना कब खाते हैं? जैसे रोज-रोज खाते हैं वैसे ही धार्मिक आराधना का भी निरंतर अभ्यास होना चाहिए।

धनुर्विद्या का अभ्यास करनेवाला एक दिन में अर्जुन नहीं बनता।

+ सदैया = सदा आने वाले
कदैया = कभी-कभार आने वाले

निरंतर अभ्यास होगा तो सफल हो पाएगा। साधु जीवन स्वीकार करने का मन बने तो बहुत अच्छी बात और वैसा मन नहीं बन पाए तो श्रावक बन सकते हैं। श्रावक के बारह व्रत पुस्तक किस-किसके पास है? किस-किसने पढ़ी? नहीं पढ़ी हो तो पढ़ने का लक्ष्य बनाएं। पढ़ते हुए जब भी मन में भावना पैदा हो जाए कि यह नियम मेरे से पल जाएगा, इस नियम की पालना करने में मैं समर्थ हूँ तो उस नियम पर राइट लगा दिया जाए। ऐसे करते-करते बहुत सारे पापों से निवृत्त हो जाएंगे।

ज्ञानीजन मानते हैं कि व्रत ग्रहण करने से समुद्र जितना पाप एक लोटे में समा जाएगा। यदि व्यक्ति त्याग-प्रत्याख्यान नहीं करता है तो सारे लोक के पाप उसके लिए खुले हैं। सारे पापों की क्रिया लगेगी और त्याग-प्रत्याख्यान कर लेने से बहुत सारे अनर्थ पाप रुक जाएंगे। बहुत-से लोगों को ज्ञान ही नहीं है, जानते ही नहीं हैं इसलिए वे पच्चक्खाण करने में हिचकिचाते हैं।

शादी करने से पहले शादी के स्वाद को जाना था क्या?

(श्रोतागण बोले- नहीं जाना)

फिर कैसे शादी कर ली! पहले यह नहीं सोचा कि कभी तलाक की नौबत आ जाएगी तो क्या करूंगा! संसार के कार्यों में ज्यादातर ऐसी तैयारी नहीं होती। कोई व्यक्ति रुपये उधार लेकर व्यापार कर रहा है। उसने कभी नहीं सोचा होगा कि यदि पैसा नहीं चुका पाया तो मेरी जमीन-जायदाद चली जाएगी! ऐसा कम ही सोचते हैं, किंतु त्याग-पच्चक्खाण की बात पर व्यक्ति विचार करता है कि पच्चक्खाण टूट जाएगा तो क्या होगा।

कपड़ा फट जाए तो क्या करेंगे?

(श्रोतागण बोले- नए कपड़े सिला लेंगे)

कपड़ा फट जाने के डर से पहनना तो नहीं छोड़ेंगे न!

वैसे ही त्याग को छोड़ना नहीं है। किन्हीं कारणों से पच्चक्खाण टूट जाए तो आलोचना करके उसका शुद्धिकरण किया जा सकता है।

सुनंदा अपने कर्तव्य पर दृढ़ता से चल रही है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

विजय को बात-बात पर गुस्सा आ जाता है। उसके दिमाग में जो

एक बात जमी हुई थी, वह थी सुरेश से नफरत। नफरत करनेवाला यह नहीं जानता कि उससे उसका क्या नुकसान होगा। उसको यह लगता है कि मैं जो कर रहा हूँ अच्छा कर रहा हूँ। नफरत बहुत बड़ी बीमारी है सब कुछ बर्बाद कर देती है। जिसको यह बीमारी लग जाती है उसके जीवन को लील लेती है। जिसके प्रति नफरत हो जाती है, उसकी हर क्रिया के प्रति मन में प्रतिक्रिया पैदा होती है। जिसके प्रति लगाव है वह यदि वैसी ही क्रिया करे तो खुशी होती है जबकि वही कार्य कोई दूसरा करता है, जिससे नफरत है तो वह अशोभनीय लगती है।

सुरेश से विजय की पहले से ही नहीं पटती थी। सुनंदा द्वारा सुरेश की वकालत करना, सुरेश का पक्ष लेना विजय के लिए एकदम असह्य हो रहा था। विजय ने सुनंदा को समझाने का काफी प्रयत्न किया। अपने बहन-बहनोई को भी बुला लिया। उसके बहन-बहनोई आ गए। बहन-बहनोई के सामने घटी घटना की अभी चर्चा हुई। उनके सामने सुनंदा ने विजय से कहा कि मैंने आपसे शादी की है, सुरेश से नहीं। सुरेश को मैं अपने पीहर से लेकर नहीं आई, जिससे उसके साथ मेरा कोई संबंध या मोहब्बत हो। वह भी इसी घर की परछाई है। वह अपंग है, दिव्यांग है, किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि उसका घर में कोई अधिकार नहीं है। उसका भी जीवन है। उससे इतनी नफरत क्यों, इतनी ईर्ष्या क्यों?

यदि सुनंदा हाँ कर देती कि सुरेश को अनाथालय में भरती करवा दीजिए तो विजय बहुत खुश होता। तब सुनंदा बहुत सुंदर हो जाती। नहीं तो वह सुहा ही नहीं रही है। लोगों की दृष्टि अलग-अलग होती है।

80 वर्ष की एक वृद्धा की तबीयत नर्म हो गई। वह खाट पर सोई हुई थी। उसे उठने-बैठने में कठिनाई हो रही थी। तबीयत नर्म हुए तीन-चार दिन निकल गए। एक दिन एक व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा आया और कहा, दादी! तुमने सुना, क्या हुआ, अमुक की बेटी अमुक आदमी के साथ भाग गई। पता नहीं दादी को कहाँ से फुर्ती आई और वह उठकर खड़ी हो गई। वह चार-पाँच घरों में घूमकर चर्चा करके आ गई।

(श्रोतागण हँसने लगे)

हँसने की बात नहीं है। फुर्ती कहाँ से आ गई? उस समय उसका सारा ध्यान भागने वाली लड़की पर चला गया और अपने शरीर से हट गया। वह भूल गई कि मैं तीन-चार दिनों से खाट पर पड़ी हूँ, मुझमें शक्ति नहीं है।

एक व्यक्ति को लकवा हो गया था। वह खाट पर सोया रहता था। उससे उठना-बैठना नहीं हो पा रहा था। एक दिन उसके घर में आग लग गई और वह उठकर भाग गया। उसका पूरा ध्यान अपने आपको बचाने में था। पहले उसके दिमाग में यह बात थी कि मुझे लकवा हो गया है, मैं उठ नहीं सकता, कोई काम कर नहीं सकता। आग लगी तो यह बात गौण हो गई और वह उठकर भाग गया। अनुकूल-प्रतिकूल अवसरों का मन पर असर पड़ता है।

विजय के मनोनुकूल भी नहीं हो रहा था। वह सुरेश पर पहले से खफा था ही, सुनंदा से भी नाराज हो गया। सुनंदा ने स्पष्ट कह दिया कि सुरेश इस घर की परछाई है, उसको कैसे छोड़ दिया जाए।

मानवता की बात क्या होती है? मानव के काम मानव ही आता है। मानव यदि किसी के काम नहीं आए तो वह मानव ही कैसा! दूसरे समय में काम आए या नहीं आए, कठिनाई में किसी का सहयोगी बन जाना मानवता की रक्षा है। जिस समय किसी को प्यास लगी हो, उस समय पानी न पिलाए और बाद में उस पर अमृत बरसाने लगे तो क्या फायदा। जिस समय जरूरत हो, आवश्यकता हो, उस समय किसी का सहयोगी नहीं बन पाएं और बाद में खूब हमदर्दी दिखाएं तो वह किस काम का। इसलिए समय पर सही निर्णय लेना होता है।

सुनंदा कहती है कि सुरेश भी इनसान है, मानव है। बहुत सारे कार्य अपने आपसे नहीं कर पाता है, किंतु इसका मतलब यह तो नहीं है कि उसको पशुओं की तरह छोड़ दिया जाए। यदि आप ऐसा चाहते हैं कि इसको भाग्य भरोसे छोड़ दिया जाए तो मैं ऐसा नहीं कर सकती।

बंद करो उपदेश चिल्लाया, सुनंदा पर बहुत झल्लाया,
बहुत हो गई बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

विपरीत दिशा वाले उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव को एक कैसे किया जाए! जैसे दो विपरीत ध्रुवों का समन्वय होना बहुत कठिन काम है वैसे ही

दोनों पक्षों में से अगर कोई झुकना ही नहीं चाहे तो समझौता कैसे होगा! समझौता कराने वाला कराएगा कैसे!

विजय अपनी जिद पर अड़ा हुआ था। उसकी जिद के पीछे कोई तर्क नहीं था, कोई हेतु नहीं था, बस एक ही बात थी कि सुरेश इस घर में नहीं रहना चाहिए। सुनंदा की बात नैतिक है, नीति के धरातल पर है। देखभाल करने में समर्थ होने पर भी सुरेश को भाग्य भरोसे छोड़ देना धर्म के विपरीत है। दिव्यांग होना कर्मों का योग है। इसका मतलब यह नहीं कि उसको कर्मों का भोग भोगने दें और उसको छोड़ दें। सबसे बड़ी बात यह कि सुनंदा ने माँजी को जबान दी थी कि आप निश्चिंत हो जाइए, मैं सुरेश की देखभाल करूँगी। इसको खाना खिलाकर खाऊँगी, इसको सुलाकर सोऊँगी।

उसके सामने यह बात है कि मैंने माँजी को जबान दे रखी है। ऐसी स्थिति में सुरेश को पागलखाने (अनाथालय) में कैसे भेज दिया जाए। जब सुनंदा यह बात कहती है तो विजय को गुस्सा आ जाता है। वह जोर से पाँव पटकता है। झल्लाकर सुनंदा से कहता है, बंद करो ये उपदेश। जब देखो तब उपदेश देती रहती हो। घर में सम्प कैसे बना रहे उसके लिए विचार नहीं करती।

विजय को तीव्र गुस्सा आया। वह अंट-संट बोलने लगा। बहन शर्मिला ने उसको समझाने का प्रयत्न किया। उसे वहाँ से हटाया। क्रोध को शांत करने का एक उपाय है कि जिस स्थान पर क्रोध आता है, उस स्थान को छोड़ दिया जाए। स्थान बदल देने पर क्रोध धीरे-धीरे कम पड़ जाएगा। जिस पर क्रोध आ रहा हो उसको हटा दिया जाना चाहिए या खुद हट जाना चाहिए। दोनों में से कोई नहीं हटेगा तो क्रोध बढ़ता रहेगा।

विजय की बहन शर्मिला, विजय को दूसरे रूम में ले जाती है और कहती है भैया! तुम बोलो मत, तुम चुप हो जाओ। कहती है कि तुम इतने उग्र क्यों हो रहे हो। भाभी इतनी भोली नहीं है, समझदार है, वह समझेगी। तुम इस प्रकार से आक्रोश में आओगे तो कैसे समझौता हो पाएगा। किसी बात को धैर्य से कहो, समझदारी से करो। तुम समझने को तैयार ही नहीं हो, ऐसे में कैसे चलेगा। परिवार ऐसे नहीं चलता। समाज ऐसे नहीं चलता। एक-दूसरे को समझना पड़ता है। सुनना पड़ता है, तभी परिवार चलता है। तभी समाज चलता

है। वह कहती है कि तुमने हमको बुलाया है, हमें अपना प्रयत्न करने दो।

वह भाई को बैठाकर सुनंदा के पास गई। सुनंदा से आगे वह क्या बात करती है, दोनों में आपसी क्या बातें होती हैं, क्या कुछ समधान की बात हो पाएगी, क्या कुछ रिजल्ट निकलेगा, यह तो हम समय के साथ सुन पाएंगे।

तपस्या अनवरत जारी है। महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की आज 17 की तपस्या है। श्री सुजानमल जी आँचलिया की पुत्रवधू एवं विमल जी आँचलिया की धर्मपत्नी सुनीता जी आँचलिया कल मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुई। सुनने में आया है कि आज उनके पारणे की संभावना है। सरिता जी मुणोत धर्मपत्नी श्री अशोक जी मुणोत की आज 61 की तपस्या है। पहले भी 9,11,13,17,33,36 आदि कई तपस्याएं की हैं।

इन तपस्वी आत्माओं से प्रेरणा लें। अपना आत्मभाव जगाने का लक्ष्य बनाएं। शरीर इनका भी है। ये शरीर का ध्यान नहीं रखते तो तपस्या होती क्या? बहुत से लोग सोचते हैं कि तपस्या तो कर लूँ, किंतु शरीर कमजोर हो जाएगा। शरीर पर फर्क तो पड़ेगा। शरीर अन्न का कीड़ा है। शरीर को अन्न चाहिए। शरीर को अन्न मिलता है तो यह पुष्ट होता है, नहीं तो सुस्त हो जाता है। शरीर के भाव से ऊपर उठेंगे तो आसानी से तपस्या होगी। तपस्वी आत्माओं से प्रेरणा लें, अपना पुरुषार्थ जगाएं और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

29 अगस्त, 2023

7

विषय बने तब विष की बेल

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'विषय विष की बेलड़ी'

विषय को विष की बेल बताया गया है। जहरीली बेल के फल भी जहरीले होते हैं, किंतु वे बड़े सुंदर लगते हैं। मनोरम लगते हैं। उन फलों को ग्रहण करने का परिणाम मृत्यु के रूप में होता है।

एक व्यक्ति ने महात्मा का सान्निध्य प्राप्त किया। उसने कहा, गुरुदेव! कोई एक नियम दिला दीजिए। महात्मा ने कहा, अनजाना फल नहीं खाना। जिस फल को नहीं जानते वैसे फल को मत खाना। व्यक्ति ने कहा, ठीक है। महात्मा ने उसे नियम दिला दिया। वह व्यक्ति एक बार जंगल से जा रहा था। उसे तेज भूख और प्यास लग रही थी। साथ में दो-चार दोस्त भी थे। उनको एक पेड़ पर सुंदर, मनोरम फल लगे हुए नजर आए। खुशबू भी अच्छी आ रही थी। साथ वाला एक दोस्त दो-चार फल तोड़कर लाया और कहा भूख-प्यास लगी हो तो इसका सेवन कर लो। उस व्यक्ति ने कहा, इस फल का नाम क्या है? दोस्त बोला, नाम तो पता नहीं है, नाम से क्या करना। हमें दिख ही रहा है कि फल सुंदर है, कितनी खुशबू आ रही है। उस व्यक्ति ने कहा कि मैं फल को नहीं जानता, उसका सेवन नहीं करूंगा। उसके दोस्तों ने पूछा क्यों तो उसने कहा कि मैंने महात्मा से नियम ले रखा है कि अनजाना फल नहीं खाना। उन दोस्तों ने कहा, अरे भाई! सुंदर तो दिख रहे हैं। आकार-प्रकार भी अच्छा लग

रहा है, रसीले भी हैं, इसको लेने में क्या हर्ज है! उसने कहा, मैंने प्रतिज्ञा ली है कि मैं अनजाने फल का सेवन नहीं करूंगा।

साथ वालों को भी भूख-प्यास लगी हुई थी, उन्होंने उन फलों का सेवन कर लिया। फल खाने के पश्चात् शरीर ऐंठने लगा और कुछ ही देर बाद वे मृत्यु को प्राप्त हो गए।

जिस व्यक्ति ने फल नहीं खाया था, वह सोचने लगा कि महात्मा ने मेरा कितना उपकार किया है। मैंने उनसे नियम लिया। नियम और पच्चक्खाण से ऐसा लाभ मैं प्रथम बार देख रहा हूँ। मेरी प्रतिज्ञा नहीं होती तो मैं भी उस फल का सेवन करता और मेरा भी वही हाल होता जो मेरे साथियों का हुआ है। इस घटना से उसको प्रगाढ़ विश्वास हो गया कि त्याग-पच्चक्खाण वस्तुत: लाभदायी होते हैं। जीवन को सुरक्षित रखने वाले होते हैं।

उस फल का जो भी नाम रहा हो पर आगमों में उसको किंपाक फल बताया गया है, जिसका सेवन करने से तत्काल मृत्यु होती है। ऐसे फल सुंदर दिखते हैं, किंतु उसका परिणाम सुंदर नहीं होता।

जो वाणी सुनने में मीठी लग रही हो, जरूरी नहीं है कि उसका परिणाम भी अच्छा हो। कोई व्यक्ति दिखावे में, व्यवहार में शोभन लग रहा है, किंतु वह सच में वैसा ही है, ऐसा एकांत रूप से कहा नहीं जा सकता। चालाक व्यक्ति दूसरों को फँसाने के लिए चालाकी दिखाता है, किंतु उसका परिणाम सुंदर नहीं होता।

इसे दो घड़ों के उदाहरण से समझ सकते हैं। एक घड़ा जहर से भरा हुआ है, उसके ऊपर लगा ढक्कन भी जहर का है। एक अन्य घड़ा जहर से भरा है किंतु उसके ऊपर लगा ढक्कन अमृत का है। अमृत का ढक्कन देखकर लोग एक बार उसके प्रति आकर्षित हो जाएंगे, किंतु जब उसे खोलेंगे तो भीतर जहर भरा मिलेगा। इसी तरह किसी की वाणी बड़ी मीठी होती है, किंतु उसके मन में जहर भरा होता है। वाणी ऊपर का ढक्कन है। किसी का ढक्कन जहर जैसा होता है और किसी का अमृत जैसा होता है। यदि भीतर जहर भरा है तो अमृत रूपी वाणी लाभकारी नहीं कहलाएगी। भीतर अमृत भरा हुआ है और ढक्कन जहर का है तो वह नुकसान नहीं करेगी।

राजमती ने रथनेमि को धिक्कारते हुए कहा था कि **'धिरत्थु ते जसोकामी।'** शब्द बड़े कठोर थे, किंतु उसका मन पवित्र था। उसके मन में जहर नहीं भरा था। उसका मन अमृत से सराबोर था। इसलिए उसके द्वारा कही गई बात भले ही तीक्ष्ण रही हो, किंतु वह रथनेमि के लिए महान औषधि का काम कर गई। जो व्यक्ति ऊपर से मीठी-मीठी बातें कर रहा हो किंतु उसके भीतर जहर भरा हो, वह बड़ा खतरनाक होता है। एक व्यक्ति मुँह से फटाफट बोल जाता है और हलका हो जाता है। दूसरा व्यक्ति बोलता कम है, किंतु भीतर ही भीतर उसका प्लान गहरा होता है।

इंदिरा गाँधी को गोली किसने मारी? जैसा सुना गया है उसके अनुसार उनके अंगरक्षकों ने ही गोली मारी। बाड़ ही खेत को खाने लग जाए तो क्या होगा... वैसी ही हालत हो गई। ऊपर से व्यक्ति रक्षा का कवच लेकर चल रहा हो और भीतर घात की तैयारी चल रही हो तो सुरक्षा नहीं हो पाएगी।

खैर, यह मत देखो कि दुनिया क्या कर रही है, वह किसमें जी रही है। उसको देखने की बजाय यह चिंतन करो कि हम कहाँ पर खड़े हैं! देखो कि कहीं विषय विष की बेल को तो नहीं सींच रहे हैं। उसके फल लेने के लिए तो आतुर नहीं हो रहे हैं। विषय शब्द में पहले 'वि' आता है फिर 'ष' आता है और फिर 'य' आता है। इसे ऐसा लिखा जाए विष+य: तो मतलब होगा जो विष रूप है।

विषय का परिणमन विष रूप होता है। जो अन्न हम खाते हैं, वैसा ही खाना वीतराग भगवन् भी खाते हैं। सर्वज्ञ भगवन् भी वैसा ही भोजन करते हैं, जैसा हम करते हैं। जो भोज्य पदार्थ वे सेवन करते हैं वही हम सेवन करते हैं, किंतु उनके भोजन का परिणमन और हमारे भोजन का परिणमन एकसमान नहीं होता, अलग-अलग होता है। क्यों अलग-अलग होता है? क्योंकि हमारा उन पदार्थों के प्रति लगाव होता है। उनके स्वाद के प्रति लगाव होता है। वही आसक्ति अंधकूप बनती है। उसी से उसका परिणाम बिगड़ जाता है, परिवर्तित हो जाता है। चाहे स्पर्श हो, रस हो या गंध हो या कोई भी विषय हो।

विषय अलग है और हम अलग हैं। दोनों की भिन्नता बनी हुई है। हमारा मन उस ओर आकर्षित नहीं हो, हम उसको प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करें

जैसा आए उसे सहज रूप से, स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर लें तो वह विष नहीं बनेगा। यह केवल खाने के विषय की बात नहीं है। कैसा भी पदार्थ हो सुगंधित हो या दुर्गंधित, रूक्ष स्पर्श वाला हो या कोमल स्पर्श वाला। पाँचों इंद्रियों के पाँचों विषयों के साथ आसक्ति भाव का संबंध नहीं जोड़ना चाहिए। उनके प्रति मन आकर्षित नहीं होने देना चाहिए।

25 बोल के थोकड़े में 12वाँ बोल क्या है? पाँच इंद्रियों के 23 विषय हैं। विषय जब तक अपने आपमें हैं, तब तक वे विष रूप नहीं हैं, किंतु जैसे ही उनके साथ आकर्षण जुड़ता है, 'यह अच्छा है' 'यह बुरा है' का भाव जुड़ता है वैसे ही विकार पैदा हो जाते हैं।

एक गृहिणी भोजन बना रही थी। भोजन बनाते हुए उसके मन में विचार आया कि गाँव में म.सा. विराजे हुए हैं। उसने यह सोचकर थोड़ा-सा भोजन बढ़ा दिया कि कभी म.सा. गोचरी के लिए आ जाएं। इससे क्या फर्क पडा? वह आहार म.सा. के लिए विष का रूप बन गया। वह जहरीला बन गया। आप कहेंगे कि म.सा.! भावना शुद्ध थी, भोजन बनानेवाले की भावना में कोई विकार नहीं था। म.सा. को साता पहुँचाने की भावना थी।

म.सा. के शरीर को साता पहुँचाने की भावना थी, आत्मा को साता पहुँचाने की भावना नहीं थी। हमारा ज्यादा ध्यान शरीर पर होता है। म.सा. बीमार हो जाएं तो इलाज करना और आत्मा बीमार हो जाए तो?

शरीर बीमार होने पर, रुग्ण होने पर लोग इलाज के लिए चिंतित हो जाते हैं। डॉक्टर को दिखाना है, ऑपरेशन कराना है, जो कुछ भी करना हो करते हैं। नीमच में डॉक्टर बढ़िया नहीं मिले तो इंदौर चले जाएंगे। इंदौर में नहीं हो तो मुंबई चले जाएंगे। वहाँ पर भी इलाज नहीं हुआ तो विदेश चले जाएंगे। किसके लिए चले जाएंगे? शरीर की बीमारी दूर करने के लिए विदेश तक चले जाएंगे पर मन की बीमारी दूर हो रही है या नहीं? आप लोग डॉक्टर से पूछते हो कि डॉक्टर साहब! आपने जो दवा लिखी है उसका कुछ साइड इफेक्ट तो नहीं है, किंतु आपके बोलने का, आपकी सोच-विचार का साइड इफेक्ट कुछ है या नहीं है? क्या उस साइड इफेक्ट के विषय में विचार किया? दूसरों का बुरा होगा या नहीं होगा, किंतु उससे अपना बुरा जरूर हो जाएगा। अच्छा सोचेंगे तो

अपना अच्छा पहले होगा। बुरा सोचेंगे तो दूसरों का बुरा होगा या नहीं होगा, किंतु अपना बुरा पहले होगा। यह साइड इफेक्ट अपने विचारों का होता है।

दवा के साइड इफेक्ट से ज्यादा-से-ज्यादा शरीर का अंत हो जाएगा, पर मन के विचारों का साइड इफेक्ट कहाँ ले जाएगा? उसकी कहानी बहुत लंबी हो जाएगी।

समरादित्य नाम के एक ग्रंथ में अग्निशर्मा और गुणसेन का वर्णन आता है। अग्निशर्मा के मन में क्रूर भाव आ गया, रौद्र विचार आ गया कि यह राजा मेरे साथ बार-बार दुर्व्यवहार कर रहा है। बचपन में भी मुझे सताता था, अब मैं तपस्वी बन गया फिर भी मेरे साथ दुर्व्यवहार कर रहा है।

आज का राजा जब राजकुमार था, तब अग्निशर्मा को चिढ़ाता था। खेल-खेल में उसको नीचा दिखाने की बात हो जाती थी। राजकुमार से लोहा ले कौन! अग्निशर्मा बेचारा मन मसोस कर रह जाता। अग्निशर्मा बाद में तपस्वी बन गया और राजकुमार गुणसेन राजा बन गया। राजा को मालूम पड़ा कि तपस्वी बने अग्निशर्मा ने मासखमण किया है तो उसने निवेदन किया कि इस बार आपके मासखमण का पारणा मेरे घर होना चाहिए। अग्निशर्मा मासखमण की तपस्या का पारणा एक ही घर में करता है। यदि पारणा नहीं हो पाए तो वापस मासखमण चालू कर देता।

अग्निशर्मा ने राजा की बात स्वीकार कर ली। वह राजा के घर मासखमण का पारणा करने पहुँचा। संयोग से उस दिन राजा को शिरोवेदना हो रही थी। उसके माथे में भयंकर दर्द हो रहा था। जैसे माथा फट रहा हो। सब लोगों का ध्यान राजा की बीमारी की ओर था। अग्निशर्मा वहाँ पहुँचा पर उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया तो वह वापस लौट गया और फिर मासखमण की तपस्या चालू कर दिया।

शिरोवेदना ठीक होने पर राजा ने जाँच-पड़ताल की तो पता चला कि एक तपस्वी आया तो था, किंतु किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। तपस्वी के चरणों में पहुँचकर राजा ने क्षमायाचना की। कहा कि मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई, बड़ा अपराध हो गया, आप मुझे क्षमा करें। अगली बार के लिए राजा ने उसको पुन: आमंत्रित किया।

अगले पारणे के दिन राजमहल में राजकुमार का जन्म होने से खुशियाँ मनाई जा रही थीं। बधाइयाँ बाँटी जा रही थीं। तपस्वी अग्निशर्मा आया किंतु उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह दूसरी बार वापस लौट गया। उसने फिर मासखमण शुरू कर लिया। राजा को मालूम पड़ा तो वह उसके चरणों में पहुँचे और क्षमायाचना करके फिर से निवेदन किया। अग्निशर्मा ने तीसरी बार भी निवेदन स्वीकार किया।

अग्निशर्मा तीसरी बार गया तो वहाँ युद्ध की तैयारी हो रही थी। पड़ोसी देश के सम्राट ने युद्ध का ढिंढोरा पीट दिया था। इसलिए वहाँ पर युद्ध की तैयारी होने लगी। अग्निशर्मा तीसरी बार वहाँ गया, किंतु किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया। अत: इस बार भी वह लौट गया और उसने अगला मासखमण कर दिया। मालूम होने पर राजा फिर से उसके चरणों में पहुँचा और उससे क्षमायाचना की। इस बार अग्निशर्मा की लेश्या भड़क उठी। उसने कहा कि तुम मेरे साथ बार-बार दुर्व्यवहार कर रहे हो। बचपन से मैं देख रहा हूँ, तुम अभी भी नहीं बदले हो। उसने निदान किया कि जन्मों-जन्मों तक मैं गुणसेन का वध करने वाला बनूँ।

इसका साइड इफेक्ट क्या हुआ? कई जन्मों तक वह गुणसेन की आत्मा का वध करने वाला बना, किंतु ऐसा करने से किसकी आत्मा कलुषित हुई?

हमारे खाते में भी वैसा ही लिखा जाता है जैसा हम व्यवहार कर रहे होते हैं। इसलिए कैसा विचार कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, इसका अन्वेषण अवश्य करना।

लोग कहते हैं- 'जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन।' कई लोगों पर यह बात लागू भी होती है, किंतु सब पर लागू नहीं होती। वीतराग भगवान भी उसी आहार को करते हैं, उन पर यह बात लागू नहीं पड़ती। उनका मन चंगा होने से खाने को लेकर उनके मन में कोई भी अंतर आना संभव नहीं है। चूँकि हमारा मन अभी राग-द्वेष में फँसा हुआ है, उसमें आसक्ति का लेप लगा हुआ है, इसलिए अन्न खाते हुए जैसा विचार होता है, उसी प्रकार से मन का परिणमन होता है। खाते हुए मन पवित्र रहेगा तो पवित्रता का संचार होगा और कलुषित भाव बनेंगे तो मन अपवित्र रहेगा। बहुत बार ऐसा हो जाता है कि भोजन की

पंक्ति में बैठने पर एक व्यक्ति को बड़े मनुहार और प्रेम से भोजन परोसा जाता है और दूसरे व्यक्ति को उपेक्षित ढंग से परोसा जाता है। ऐसे में मन में भिन्न विचार आ जाते हैं। आते हैं या नहीं? मन में विचार आ जाते हैं। एक को घेवर-रबड़ी परोसी जा रही है और हमारी थाली में थूली परोस दी तो खाना गले में उतरेगा क्या? रिएक्शन हो जाएगा।

किसका रिएक्शन हुआ? रोटी खाने से मन खराब नहीं हुआ।

सामने वाले का व्यवहार अखर गया। उसने रोटी में जहर घोल दिया। भले ही सामने वाले की ऐसी भावना नहीं रही हो।

एक सेठ ने पंचों की जाजम बिछवाई। उसने पंचों से निवेदन किया कि मेरे मन में विचार हो रहा है कि मैं पूरी बिरादरी को भोजन कराऊँ। मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं है। मैं अपने जीते जी समाजवालों को भोजन कराना चाहता हूँ। पंचों ने स्वीकृति दी। पंचों ने सबको निमंत्रण दे दिया। उस समय पंचों का राज था। न्योता घरधणी नहीं देता था। न्योता देने का अधिकार पंचों का होता था। अब पंचों का जमाना नहीं रहा। खैर भोजन के लिए समाजवालों को न्योता चला गया।

बिरादरी वाले भोजन करने के लिए आए। सेठ व घरवाले बड़े प्रेम से परोसगारी कर रहे थे। नौकर पापड़ की छबिया लेकर चल रहा था और सेठ परोस रहा था। भावना से परोसगारी हो रही थी। एक जगह सेठ ने पापड़ उठाया कि पापड़ खंडित हो गया। वह पापड़ जिस व्यक्ति की थाली में परोसा गया उसके मन में विचार पैदा हुआ कि सेठ ने मुझे नीचा दिखाने के लिए खंडित पापड़ परोसा है। उसका सारा खाया-पीया हराम हो गया, जबकि सेठ के मन में ऐसी कोई बात नहीं थी। सेठ का ध्यान नहीं गया कि पापड़ खंडित है। जैसा पापड़ था उसने परोस दिया, किंतु जिसकी थाली में पापड़ परोसा गया उसके मन में रिएक्शन चालू हो गया।

दो-चार दिन बाद उसने पंचों से कहा कि मैं भी बिरादरी वालों को खिलाना चाहता हूँ। पंचों ने कहा, भाई! अपना सामर्थ्य देख लो। अपने आय-व्यय का हिसाब देख लो। हमारे खयाल से तुम्हारे लिए यह ठीक नहीं रहेगा। वह कहने लगा, पंच लोग भी सेठ के गुलाम हो गए। अमुक सेठ को रजा दे दी,

मुझे नहीं दे रहे। पंचों ने कहा, हमें कोई दिक्कत नहीं है। जैसा तुम चाहो वैसा करो।

पंचों ने न्योता दे दिया। सारा समाज भोजन करने के लिए आया। वह सेठ भी आया। सेठ के मन में कोई बात नहीं थी, किंतु खिलाने वाले के मन में बात थी। वह परोसगारी कर रहा था। उसने पापड़ के टुकड़े-टुकड़े सेठ की थाली में परोसे। सेठ के मन में कोई विचार नहीं हुआ। वह पीछे मुड़कर देखता है और बोलता है, सेठ साहब! क्या आपको ध्यान है? सेठ ने कहा, क्या भाई! उसने कहा आपने मुझे पापड़ परोसा था। इसलिए मैंने पापड़ के टुकड़े-टुकड़े परोसे हैं। सेठ ने कहा, अरे भोलिया! इससे क्या हो गया। पापड़ तो वैसे ही टुकड़े करके खाना होता है। तुमने तो मेरा काम आसान कर दिया, मुझे पापड़ तोड़ना नहीं पड़ेगा। सेठ ने उसको अन्यथा नहीं लिया और न ही रिएक्शन किया।

जिसके मन में रिएक्शन हुआ उसको अपना घर गिरवी रखना पड़ा। घर गिरवी रखकर समाज को भोजन करवाया। सेठ को नीचा दिखाने के लिए ऐसा किया, किंतु सेठ को कुछ लगा ही नहीं। उसको कोई रिएक्शन नहीं हुआ।

आपका मन क्या बोल रहा है? आपका मन रिएक्शन करेगा तो उसका परिणाम विपरीत मिलेगा। रिएक्शन नहीं होगा तो कैसा भी खाना हो पवित्रता के साथ स्वीकार करेंगे तो उसका परिणमन भी सही होगा।

'विषय विष की बेलड़ी, आसक्ति अंधकूप'

आसक्ति हमें अँधेरे कुएं में डालने वाली है। ज्ञानी लोग उससे भ्रमित नहीं होते हैं। वे जानते हैं कि आसक्ति का परिणाम क्या होने वाला है। ज्ञानी परिणाम को देखता है और मूर्ख स्वाद को।

सुनंदा अपने कर्तव्य पर अटल है। विजय क्रोध में चिल्ला रहा है। शर्मिला ने उसे एक तरफ ले जाकर बैठाया और कहा कि तुम रुको, हम चर्चा करते हैं।

सुंदर हो संस्कार भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
तनाव देखो भाभी कितना, समझ सको ना क्या तुम इतना,
नहीं हो तुम नादान, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

बहन अर्थात् सुनंदा की ननद। शर्मिला ने विजय को अलग बिठाया

और सुनंदा से कहा, भाभी! तुम स्वयं देखो विजय को, कितना तनाव है। क्या उसको इतना तनाव में रखना ठीक है? तुम उसकी पत्नी हो। तुमको ऐसा करना चाहिए जिससे विजय के मन को समाधि मिले, शांति मिले। पत्नी का धर्म क्या होता है? पति को दुख में रखना या सुख में! पति को कष्ट देना या सुख देना! वह कहती है कि तुम नादान नहीं हो, समझदार हो। परस्पर ऐसी तकरार लाभदायी नहीं होती।

यह बात कौन समझा रही है? किसको समझा रही है?

(श्रोतागण बोले– सुनंदा की ननद, सुनंदा को समझा रही है)

विभिन्न हेतुओं द्वारा, विभिन्न तथ्यों द्वारा सुनंदा की ननद उसको समझा रही है। उसका सार इतना ही है कि ऐसा करो जिससे विजय शांति में रहे, समाधि में रहे। जिसमें वह राजी हो वैसा ही करो।

वह यह भी कहती है कि अब मैं तुम्हें ज्यादा क्या कहूँ। तुम स्वयं भी शिक्षित हो। मुझे ज्यादा सीख देने की आवश्यकता नहीं है। तुम केवल यह सोचो कि तुम्हारा कर्तव्य क्या बनता है।

हमारा कर्तव्य क्या है?

पूर्णिमा कल है, किंतु बता रहे हैं कि आज ही रक्षाबंधन है। रक्षाबंधन कहाँ से चला और कहाँ आकर सिमट गया? रक्षाबंधन का इतिहास क्या है? आगमों में कोई ऐसा इतिहास नहीं मिलता है, रक्षा की बात जरूर मिलती है। जो धर्म की रक्षा करेगा धर्म उसकी रक्षा करेगा। रक्षा करने वाला एकमात्र धर्म ही है।

जैसे संविधान का पालन करनेवाले को कोई अपराधी नहीं मानेगा, जो संविधान का खंडन करेगा वह दोषी माना जाएगा, अपराधी माना जाएगा, वैसे ही तीर्थंकर देवों की मर्यादाओं का पालन करनेवालों की रक्षा सुनिश्चित है।

वैदिक संस्कृति का एक ग्रंथ है भविष्य पुराण। उसमें रक्षा से संबंधित एक श्लोक आया है, किंतु वह भी यह नहीं दर्शाता कि बहन, भाई को राखी बाँधती है। मेरी जानकारी के अनुसार लगभग 800 वर्षों से राखी का संबंध भाई और बहन के साथ जुड़ा है। वैदिक संस्कृति में यह स्वीकार किया गया है कि शची इंद्राणी इंद्र को राखी बाँधती है। उसके पति को युद्ध में जाना था। शची

ने अपने पति को राखी बाँधी और अपनी शक्ति को उसमें प्रक्षेपित किया कि मेरी शक्ति आपके साथ रहेगी। आप अजेय रहोगे, आप हारोगे नहीं।

आजकल लोग रक्षा पोटली बँधवाते हैं। कइयों के हाथ में रक्षापोटली रहती है। क्या उनको विश्वास है कि रक्षापोटली से हमारी रक्षा होगी? रक्षापोटली से रक्षा होगी क्या? हमारा सद्व्यवहार हमारी रक्षा करनेवाला होगा। हमारा खाना-पीना, हमारा रहन-सहन हमारी जिंदगी की रक्षा करनेवाला होगा। रक्षापोटली बँधवाकर गलत काम करेंगे तो रक्षा नहीं हो पाएगी। रक्षापोटली बँधवाकर किसी के प्रति बुरा विचार लेकर चलेंगे तो कौन बचाएगा!

जो विचार अग्निशर्मा का बना, वैसे में उसने रक्षापोटली बाँध ली होती तो क्या उसकी रक्षा हो जाती? नियम-मर्यादा का पालन करने से रक्षा सुनिश्चित है। संभव है। हाथ में धागा बाँधने या बँधवाने मात्र से कर्तव्य का पालन नहीं हो जाता।

आज औपचारिकताएं ज्यादा हो गई हैं। अभी सतियाँ जी बोल गईं कि राखी चम-चम कर रही है। चम-चम करने वाली राखी कहाँ से आ गई? भावों का यदि सूत्र है तो एक सूत ही काफी है। उसमें चमचमाहट क्यों आ गई?

राखी को चमचमाहट से तौला जा रहा है कि बहन, भाई के लिए कितनी बढ़िया राखी लेकर आई है। जितनी बढ़िया राखी लेकर आती है, उसको उतना ही ज्यादा सम्मान मिलता है। सामान्य राखी लेकर आने पर वैसा ही सम्मान मिलेगा क्या? चमचमाहट वाली और सामान्य राखी लाने वाली को एकसमान सम्मान मिलेगा या फर्क पड़ेगा? जो अच्छी राखी लाएगी उसके प्रति मन में भाव रहेगा कि अहो, कितनी बढ़िया राखी लाई और सामान्य राखी लाने वाली बहन के प्रति विचार आएगा कि अरे! कैसी राखी लाई है, हाथ खराब दिख रहा है। हाथ की आभा खराब हो गई। मन में फर्क आ जाएगा या नहीं। इस तरह की सोच वाले राखी को देख रहे हैं या भावों को?

(श्रोतागण बोले- हम भावों को देख रहे हैं)

भावों को देखने वाले कौन हैं और राखी को देखने वाले कौन हैं, यह अपने मन से छिपा हुआ नहीं है। औपचारिकता निभाई जा रही है। सालभर में

जो भाई कभी बहन के सुख-दुख नहीं पूछता, वह आज के दिन बहन से राखी बँधवाता है। सालभर से बहन ने कभी भाई से नहीं पूछा कि भाई कैसे हो, कष्ट में तो नहीं हो और श्रावण की पूर्णिमा आई तो भाई को राखी बाँधने आ गई।

जैसे हमारे यहाँ मन साफ हो या नहीं हो, पर्युषण में क्षमायाचना की औपचारिकता कर लेते हैं, वैसे ही राखी में औपचारिकता कर रहे हैं। क्षमायाचना में तो फिर भी मन थोड़ा हलका पड़ता होगा, राखी बँधवाने में कभी-कभी उलटा काम हो जाता है। कालुष्य बढ़ जाता है। 'रक्षा' का उलटा क्षार हो जाता है और राखी को उलटा करेंगे तो खीरा हो जाता है।

सुनंदा शांत भाव से ननद की बात सुन रही थी। कोई तर्क नहीं दे रही थी। उसकी ननद उसको समझाइश दे रही थी कि ऐसा नहीं होना चाहिए। क्या तुम धर्म को नहीं जान रही हो, नहीं समझ रही हो। तुम्हारा क्या कर्तव्य बनता है। सुनंदा शांत भाव से सारी बातें सुन रही थी। ननद कहती है, भाभी! तुम केवल सुन रही हो, कुछ तो जवाब दो। तुम क्या कहना चाहती हो, अपने विचार तो रखो। इस बात को तुम स्वीकार करती हो या नहीं, कुछ तो बोलो।

सुनंदा अपने क्या विचार रखेगी, उसकी भावना क्या बनती है, पतिव्रता धर्म की दुहाई देने पर वह क्या विचार करती है, समय के साथ सुनेंगे। इतना अवश्य है कि विषयों को जहरीला मत बनाओ। आसक्ति उनको जहरीला बना देती है और वह अंधकूप में डालती है। लक्ष्य रहे कि आसक्ति से बचाव हो। विषय को विष के रूप में समझें। हर पदार्थ का अपना-अपना गुणधर्म होता है। कोई मधुर होता है तो कोई कड़वा होता है। सबमें अपनी-अपनी शक्तियाँ होती हैं। उसे उसी रूप में स्वीकार करेंगे, उसी के अनुसार जानेंगे-समझेंगे तो आसक्ति नहीं होगी। द्वेष भाव नहीं रखेंगे तो आत्मा सुरक्षित रहेगी। आत्मा सुरक्षित रहेगी तो उसमें कोई रिएक्शन नहीं होगा। रिएक्शन का परिणाम दुखद होता है। रिएक्शन से समाधि नहीं मिलेगी। शांति नहीं मिलेगी। अशांति में नहीं जाना चाहते हैं तो जो पदार्थ जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करें। उसी रूप में समझने का प्रयत्न करें। समभाव से उसको स्वीकार करने का लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य-धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

30 अगस्त, 2023

8

तप संयम के लड्डू खाए जा

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

सुख और दुख दो अवस्थाएं हैं। ये अवस्थाएं प्रत्येक मनुष्य के जीवन में घटित होती हैं। मनुष्य एक की चाह करता है, दूसरी की नहीं। वह सुख चाहता है, दुख नहीं। वैसे मनुष्य जिसे सुख मान रहा है वह भी सुख नहीं है। उसको भी सुख माना गया है, पर वह इंद्रियजन्य सुख है। शरीर को साता पहुँचाने वाला सुख है। मन को साता पहुँचाने वाला सुख है। उससे आत्मा सुखी नहीं होती।

गरमी लगने पर ए.सी. चलाया जाता है। आदमी को लगता है कि इससे मुझे साता पहुँच गई। सरदी लगने पर हीटर चलाकर तसल्ली पा लेता है। बहुत पैसा कमा लिया तो खुश हो गया कि मैं धनाढ्य हो गया। सुविधाएं मिलने से व्यक्ति खुश हो जाता है क्योंकि वह उसको सुख मानता है, जबकि सच्चा सुख वह है जो किसी पर आधारित नहीं हो। जो दूसरों पर आधारित है वह सच्चा सुख नहीं हो सकता। वह पराधीन सुख है। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने कहा है–

'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'

अर्थात् पराधीनता सपने में भी सुख नहीं दे सकती। इसी प्रकार जो सुख पराधीन है, अन्य पर आधारित है वह सपने में भी आत्मा को सुखी नहीं बना सकता। पराधीन का मतलब है, बाह्य अवस्था पर टिका हुआ। मन यदि इंद्रिय सुख में मुग्ध है तो भी पराधीनता ही है, जबकि सच्चाई यह है कि किसी

वस्तु या पदार्थ में सुख नहीं है। वह सिर्फ कल्पनाजन्य है। इसीलिए थोड़े समय बाद उस चीज की उपेक्षा होने लगती है। कुछ समय बाद वह मन को नहीं भाती। नहीं भाने का कारण है कि वह चीज पुरानी हो गई है। उससे मन उतर गया।

जो अपना है, स्वयं का है, वह सुख है। वह बाह्य वस्तुओं में खोजने पर नहीं मिलेगा। बाह्य सुख-दुख का कारण कल्पना है। जिसमें सुख की संवेदना कर ली वह सुख हो गया और जिसमें दुख की संवेदना कर ली वह दुख हो गया।

'मन मोदक खाना नहीं, मिले न उसमें स्वाद।
जो मोदक खाता रहे, तस जीवन बर्बाद।।'

बहुत-से लोग मन के लड्डू खाते रहते हैं और खुश होते रहते हैं। उसमें कितना स्वाद होता है उसे खानेवाला ही जान सकता है। अनावश्यक रूप से हम मन को चलाते रहते हैं। निरर्थक विचार चलते रहते हैं। हमारे बहुत सारे विचार निरर्थक होते हैं।

एक शोध में बताया गया है कि लगभग 85 प्रतिशत विचार व्यक्ति पकड़ नहीं पाता। व्यक्ति को ध्यान नहीं रहता कि मेरे क्या विचार चल रहे हैं। 15 प्रतिशत विचार वह पकड़ पाता है, किंतु उनको भी पूरा नहीं कर पाता। उनका क्रियान्वयन नहीं हो पाता।

मेथी के लड्डू कब खाते हैं?

(श्रोतागण बोले- सरदी में खाते हैं)

सरदी में रोजाना मेथी के लड्डू की एक माला गिन लें तो काम हो जाएगा? मेथी का लड्डू शरीर में जो काम करेगा, वही काम उसकी माला गिनने से हो जाएगा?

(श्रोतागण बोले- नहीं होगा)

क्यों नहीं होगा?

आप समझ रहे हैं कि मेथी के लड्डू खाने से जो काम होगा, वह माला गिनने से नहीं होगा। नवकार मंत्र की माला गिनने से लाभ हो जाएगा क्या? माला गिनते हुए मनकों पर कितना ध्यान रहता है? उसके साथ ध्यान कितना

जुड़ पाता है?

भगवान महावीर का सिद्धांत है– **'तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे'**

अर्थात् जिसमें लगे हो उसमें तन्मय हो जाओ। उसी को प्रधानता दो। मन जो भी कर रहा है आपकी साक्षी से होना चाहिए। उससे अलग नहीं होना चाहिए। गलत कर रहा हो या अच्छा कर रहा हो आप उसके साथ रहें। आप का मतलब है, आपका उपयोग, आपका ज्ञान, आपका ध्यान उसके साथ खड़ा रहेगा तो बहुत संभव है कि मन गलत रास्ते पर जा नहीं पाए। किंतु समस्या यह है कि आप उसके साथ खड़े रह नहीं पाते हैं। आपने उसको फ्री छोड़ दिया है। उसे जहाँ जाना है जा रहा है। जो करना है वह कर रहा है। पता ही नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है। उपयोगपूर्वक मन से किया गया काम स्मृतिकोश में जम जाएगा। वह लंबे समय तक भूलेगा नहीं। रटी हुई चीज थोड़े समय के बाद दिमाग से उतर सकती है। इस सभा में भी ऐसे बहुत–से लोग होंगे, जिन्होंने कभी 25 बोल याद किए होंगे, पर आज याद नहीं है।

कंठस्थ ज्ञान को बार–बार दुहराने से वह याद रह जाता है। नहीं दोहराने से उतर जाएगा। याद नहीं रहेगा। बहुत–से लोगों ने प्रतिक्रमण भी याद किया होगा, किंतु उसका परावर्तन नहीं किया गया तो साल–दो साल बाद भूल गए। उसके पाठों पर, शब्दों पर चिंतन होगा, उसके साथ मन जुड़ेगा तो शायद भूलेंगे नहीं।

नवकार मंत्र भी हम कितना शुद्ध बोलते हैं?

एक–एक शब्द और एक–एक अक्षर पर ध्यान देंगे तो मालूम पड़ेगा कि कहीं चूक तो नहीं गए। प्रतिक्रमण में तीसरा आवश्यक वंदना का है। किस पाठ से वंदना की जाती है?

(श्रोतागण बोले– इच्छामि खमासणो से वंदना दी जाती है)

खमासमणो में पाँच अक्षर है और बोले कितने जाते हैं?

क्या बोलते हैं, खमासणो।

तिक्खुत्तो के अंत में बोलते हैं, मत्थेण वंदामि, जबकि शुद्ध है मत्थएण वंदामि। यह चूक इसलिए होती है क्योंकि उस पर ध्यान नहीं दिया गया। एक बार भी उस पर अनुप्रेक्षा हो जाए तो उसे जल्दी से भूलेंगे नहीं। मन

को सतत कोई कार्य मिलना चाहिए। यह उसकी आवश्यकता है। नहीं तो आप सुनते ही हैं 'खाली दिमाग शैतान का घर।' दिमाग खाली रहेगा तो उसमें शैतान बस जाएगा। एक गीत में कहा गया है- 'सूने घर बेताल' अर्थात् सूने घर पर भवनपति देव अपना अधिकार जमा लेते हैं। फिर भयावह स्थिति पैदा हो जाती है। इसलिए लोग जल्दी से घर को सूना नहीं छोड़ते हैं। दो-चार दिन सूना छोड़ने की बात अलग है, लंबे समय तक सूना नहीं छोड़ते। घर की रखवाली के लिए किसी-न-किसी आदमी को रख लेते हैं।

जैसे सूना घर बेताल का वास हो जाता है वैसे ही मन सूना रहेगा तो उसमें भूत का वास हो जाएगा। वह खरी-खोटी कल्पनाएं करता रहेगा। चूँकि उसे चलाना है तो वह चलता रहेगा। उसको यदि कोई काम दे दिया जाएगा तो वह उसमें लगा रहेगा। मन के लड्डू खाने का समय ही नहीं मिलेगा। कभी-कभी लोग यह सोच लेते हैं कि चलो लड्डू का स्वाद भले ही नहीं आया, किंतु हानि क्या हुई। लाभ नहीं हुआ तो नहीं हुआ, किंतु हानि तो नहीं हुई! हानि जरूर होती है। उससे मन कमजोर हो जाता है।

भगवान महावीर का एक सूत्र है- **'अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अवियाणए।'** इसका अर्थ है कि आर्तभाव में चलनेवाला मन परिजीर्ण हो जाता है, वह बोध को प्राप्त नहीं कर पाता। बोध प्राप्ति के लिए मन स्ट्रोंग होना जरूरी है। लोग कहते हैं कि हमको ज्ञान चढ़ता नहीं है, प्रतिक्रमण याद होता नहीं है। उसका एक कारण है कि उसने मन को पहले ही व्यर्थ की कल्पना में थका दिया। उसको फ्री छोड़ दिया कि जैसी तुम्हारी मरजी हो वैसा करो। अब आप उसको नियंत्रित करना चाहते हैं, पर वह नियंत्रित होता नहीं है। ज्ञान चढ़ेगा, नहीं चढ़ने जैसी बात नहीं है, मन को उसमें एकाग्र करें।

जब बच्चे को शुरुआत में स्कूल में भरती किया जाता है तो उसका मन नहीं लगता। क्यों नहीं लगता? क्योंकि उसका मन खिलौने में लग रहा था। किंतु धीरे-धीरे उसका मन अभ्यस्त हो जाता है। फिर वह स्कूल मिस नहीं करना चाहता। कोई भी क्लास मिस नहीं करना चाहता। एक दिन भी व्यर्थ की छुट्टी लेने की कोशिश नहीं करता। परिवार वाले किसी प्रसंग से छुट्टी दिला दें तो बात अलग है उसका मन नहीं चाहता है। वैसे ही बहुत समय से हमने मन

को नियोजित नहीं किया, इसलिए वह जल्दी से नियंत्रित नहीं होता। वह अपनी लय में चलता रहता है। धीरे-धीरे सहलाकर उसको सही राह पर लगाना होता है, जबरदस्ती से नहीं। जब मन लग जाएगा तो आप देखना, जो आप याद करना चाहेंगे वह बड़े आराम से हो जाएगा।

शब्द याद रखना कठिन होता है, अर्थ याद रखना कठिन नहीं होता। यदि आपको अर्थ समझ में आ गया तो शब्द की लगाम आपके हाथ में आ गई।

खमासमणो का अर्थ क्या होता है?

खमासमणो का अर्थ होता है, हे क्षमाश्रमण! अब हे क्षमाश्रमण आपको याद रह गया तो खमासमणो याद हो जाएगा। क्षमाश्रमण आपको समझ में आ गया तो खमासमणो शब्द की लगाम आपके हाथ में आ जाएगी। अर्थ के साथ उसकी अनुप्रेक्षा और हो जाए तो बहुत अच्छी तरह से वह कंट्रोल में आ जाएगा। आप उसको भूलेंगे नहीं। इसलिए कहा गया- 'मन मोदक खाना नहीं, मिले न उसमें स्वाद' यानी मन के लड्डू खाते रहेंगे तो उसका स्वाद तो आएगा ही नहीं मन को कमजोर बना लेंगे। उसके भीतर सामर्थ्य नहीं जगेगा। मन में शक्ति पैदा करना चाहते हैं तो उसको कोई काम दिया जाए और जब तक वह काम में लगा रहे तब तक आप भी उसके साथ खड़े रहें। आप उसको धन्यवाद दें कि वाह! तुमने कितना सुंदर काम किया है। कितना बढ़िया काम किया है। कुछ काम नहीं है तो लिखने का काम करो।

हमारे ईश्वरचंद जी म.सा. प्रतिदिन एक तीर्थंकर भगवान का नाम 108 बार लिखते थे। इससे क्या होगा, यह प्रश्न हो सकता है। इससे धारणा बनती है। मन उस बात को पकड़ता है- 'अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा' ये चार आभिनिबोधिक ज्ञान (मति ज्ञान) के भेद बताए गए हैं।

अवग्रह यानी स्पष्ट नहीं है कि कौन है, क्या है, किंतु कुछ है। थोड़ा और नजदीक हुआ तो लगा कि आदमी होना चाहिए। थोड़ा और नजदीक आया तो पक्का हो गया कि आदमी ही है, यह अवाय हुआ। अवग्रह यानी कुछ है। आदमी होना चाहिए, यह ईहा है यानी झुकाव आदमी की तरफ हो गया। आदमी ही है, यह अवाय हो गया। मन ने उसको ग्रहण कर लिया। उसका

चेहरा अच्छी तरह से ग्रहण कर लिया, यह धारणा है और वह धारणा में जम जाएगा। लंबे समय बाद वह आदमी आपसे मिलेगा तो आपको क्या लगेगा? आप सोचेंगे कि इसको कहीं देखा है अर्थात् धारणा में वह बात जमी हुई है, किंतु अभी प्रकट नहीं हो पा रही है। आप सोचेंगे कि इसको पहले कहीं देखा है फिर लगेगा कि मैं व्याख्यान में गया था, इसको वहाँ देखा है वहाँ मिला था। अब याद आ गया, इसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। यह भूत, वर्तमान का जोड़ रूप होता है।

जो हमारी धारणा में चला जाता है उसको कभी व्यक्त किया जा सकता है। धारणा में जमने का मतलब है, उसको गहराई से पकड़ना, गोडाउन में रख लेना, किंतु यह ध्यान रखना, गोडाउन में रखी हुई चीज को यदि लंबे समय तक संभालेंगे नहीं तो वह खराब हो जाएगी।

आप अपनी तिजोरी को चार-छह महीनों में देखते रहते हैं कि उसमें क्या रखा हुआ है, कौन-सा आभूषण रखा हुआ है तो आपको मालूम पड़ जाता है कि यह चीज रखी हुई है। वैसे ही धारणा गोडाउन है। उसे देखते रहना चाहिए। बार-बार देखते रहेंगे तो ज्ञान सुरक्षित बना रहेगा। रिवाइज नहीं करने से धारणा में रहे ज्ञान में भी दीमक लग जाएगा, अर्थात् वह जैसा था, वैसा नहीं रह जाएगा, बदल जाएगा।

आज एक प्रयोग करना। आपके पास किताब हो तो तिक्खुत्तो के पाठ का एक-एक अक्षर उच्चारण करना और देखना कि जो उच्चारण मैं कर रहा हूँ वह सही है क्या। बहुत बार ऐसा होता है कि किताब सामने पड़ी रहती है किंतु जो उसमें लिखा होता है, उसे नहीं बोलकर वह बोलते हैं जो याद रहता है। इसलिए आज यह प्रयोग करना। ध्यान किताब में लगना चाहिए।

'मन मोदक खाना नहीं, मिले न उसमें स्वाद'

केवल मन ही मन में विचार करते रहेंगे तो उसका स्वाद नहीं आएगा, क्योंकि जब तक वह क्रियान्वित नहीं होगा, तब तक उसका रस पैदा नहीं होगा। ज्ञान वही सार्थक होता है जो उपयोग में आ जाए, जिसका उपयोग कर लिया जाए।

सब्जी लाकर घर में रख दी और उसका उपयोग नहीं किया तो वह

सड़ जाएगी। उससे दुर्गंध आने लगेगी। आभूषण तिजोरी में रख देने से वह खुशी होगी क्या जो उसको पहनने से होती? पहनने से जो अनुभूति होती है वह रख देने से नहीं होगी। पहनने और घर पर रखने में अंतर आएगा या नहीं?

(श्रोतागण बोले– अंतर आएगा)

सही–सही बोलना। अभी तो आभूषण पहनना बड़ा मुश्किल हो गया। लोग सोचते हैं कि सोना पहन लेने से कहीं जान खतरे में न पड़ जाए। पहले लोगों का शरीर आभूषणों से सजा रहता था। अंतगडदशा सूत्र में आपने सुना होगा रत्नावली हार के बारे में। वह हार रक्त प्रवाही चार नाड़ियों को स्पर्श करता रहता था।

स्वर्ण में वह ताकत है कि नसों में कोलेस्ट्राल को जमने नहीं देता, किंतु लोग आभूषण शौक के लिए पहनते हैं, उसके उपयोग के लिए नहीं। सोने का संबंध नसों से जुड़ा है। इससे नसों में ब्लाकेज नहीं होता। स्वर्ण की उष्मा से खून का प्रवाह यथोचित बना रहता है। ऐसा आयुर्वेद मानता है। लोग इसे लगभग भूल चुके हैं। जीर्ण रोग का इलाज वैद्य लोग स्वर्णभष्म से किया करते थे जिससे शरीर एकदम स्वस्थ हो जाता था।

कुछ दिन पहले मैंने ललितांग की बात कही थी कि छह महीनों तक उसका इलाज चला और वह एकदम तंदुरुस्त हो गया। उसे पहले जैसा सौंदर्य प्राप्त हो गया। कई धातुएं भी बड़ी गुणकारी होती हैं। ऐसा नहीं है कि खाली शौक के लिए आभूषण पहने जाते थे। यद्यपि अभी लोग उसके लाभ को भूल चुके हैं। आज भी पुस्तकों में यह बात मिलती है कि चाँदी के बरतन में रखे पानी को पीने वालों की नेत्र ज्योति जल्दी से खराब नहीं होगी। पहले ताँबा, पीतल, काँसा के बरतन हुआ करते थे। अब लोहे यानी स्टील के बरतन आ गए। ये बरतन लोगों को बड़े सुंदर लगते हैं। दिखने में साफ नजर आते हैं। अब तो सिर्फ त्योहार आदि पर ही पुराने बरतन दिखेंगे।

वैसे मैं इन धातुओं का विज्ञान कराने के लिए नहीं बैठा हूँ, यह तो प्रसंगोपात कथन है। हमें मूल बात पर विचार करना चाहिए।

मूल बात क्या है?

मन मोदक खाना नहीं...

मूल बात है कि मन की दौड़ किधर हो रही है? मन कौन-सा लड्डू खा रहा है। उसमें क्या स्वाद आया।

सुनंदा का चारित्र भी सुन रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
अगर उनका दिल दुखाऊँ, जगह नरक में भी क्या पाऊँ,
बने न ऐसे भाव, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

ननद और ननदोई ने सुनंदा को समझाने का उपक्रम किया। समझाने का सार इतना ही था कि देखो, विजय कितने कष्ट में है। कितनी मेहनत करता है, घर में आने पर भी उसको शांति-समाधि नहीं मिलती, क्या यह ठीक है!

सुनंदा बड़े ही विनम्र भावों से कहती है, आपने जो कुछ भी कहा, मैंने सुना किंतु मेरी गलती कहाँ है? मेरी कोई गलती हो तो बताइए, मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। दिल दुखाने की बात तो मैं सोच भी नहीं सकती। ऐसा विचार भी मेरे मन में आ जाए तो मुझे नरक में भी स्थान मिलना मुश्किल हो जाएगा। ऐसा मैं कभी नहीं सोच सकती और न कभी सोचने में आया।

किस धातु से गढ़ी हुई थी सुनंदा। दूसरों के दोषों को देखने का तो काम ही नहीं। दूसरों का दिल दुखाने का तो नाम ही नहीं। दूसरों के प्रति न बुरा सोचना, न करना और न कहना।

यदि आपके भीतर ऐसा विचार आ जाए तो जीवन लाखीणा हो जाए पर आप बोलोगे, म.सा.! यह तो मानव मन है, सोचने में आ जाता है। सोचने में आ जाता है, इसीलिए हम संसार में रुल रहे हैं। सुखी जीवन नहीं जी पा रहे हैं।

सुनंदा के सामने परेशानियां थीं, फिर भी वह आनंद से जी रही थी। उसके सुख में कोई खलल पैदा नहीं हो रही थी। वह अपनी मस्ती में जी रही थी। उसने एक ही लक्ष्य धार रखा था कि अपने कर्तव्य पथ से हटना नहीं है। कर्तव्य का अर्थ है जो करणीय है, करने योग्य है उससे कभी पीछे नहीं हटना। चाहे कोई राजी रहे या नाराज हो।

कर्तव्य पथ को ध्यान में रखने वाले के साथ नैतिकता जुड़ी होती है। उसमें स्वार्थ की गंध नहीं होती। जिसमें स्वार्थ की गंध होती है वह कर्तव्य नहीं

होता। निस्वार्थ भाव से जो काम हो वह कर्तव्य है। चुनावी माहौल में आप जो देख-सुन रहे हैं वह कर्तव्य भावना से प्रेरित नहीं है, उसमें स्वार्थ प्रधान है।

सुनंदा अपने कर्तव्य भाव पर अटल है। उसके सामने बात आई कि विजय को कितना नीचे देखना पड़ता है। तुम उसके साथ कभी पार्टी-सोसाइटी में जाती नहीं हो। लोग बोलते हैं, क्या बात है, भाभी नहीं आती। लोग शंका करते हैं कि आपस में बनती है या नहीं!

सुनंदा ने कहा, यह बात तो मेरे सामने अभी आई है। उसके पहले यह बात कभी मेरे सामने नहीं आई। मैं धर्मपत्नी हूँ। धर्मपत्नी का कर्तव्य मैं भलीभाँति जानती हूँ।

नीति मार्ग में रहे सहायक, पत्नी होती वह सुखदायक,
जो उन्मार्ग दे टाल, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

जो पत्नी आपके कहे अनुसार चले वह सही या जो आपको नीति मार्ग पर चलाए वह सही?

(श्रोतागण बोले- नीति मार्ग पर चलाए वह सही है)

इसका मतलब है कि आप अनीति मार्ग पर चल रहे हैं। जो अनीति का पैसा लाने वाले को पसंद करे वह नारी सही है या नीति का मार्ग बताए वह सही है?

(श्रोतागण बोले- नीति मार्ग बताए वह सही है)

आज की हालत यह है कि जो धन कमाकर लाए वह पसंद है। बाप चाहता है कि बेटा धन कमाकर लाए। कैसे कमाकर लाया, कहाँ से कमाकर लाया यह नहीं पूछते।

क्या आपने कभी पूछा कि बेटा कहाँ से पैसे कमाकर लाए? वायदा बाजार से लाए या नीति की कमाई है? वायदा बाजार में लोग रातोंरात मालामाल हो जाते हैं और सूर्योदय होते ही सपाट। पत्नी को किससे प्यार है? पैसों से प्यार है। पैसा आना चाहिए बस।

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यूँ कहे, सबसे बड़ा रुपैया।।

यदि पति पैसा कमाकर नहीं लाए तो पत्नी को पसंद नहीं आएगा।

उसको समय-समय पर पैसा, आभूषण, साड़ी मिल जाए तो खुश रहती है। पत्नी यह नहीं पूछती कि कहाँ से लाए इतने पैसे? इतनी आमदनी का तो जरिया ही नहीं है फिर यह चीज कहाँ से आई?

एक वकील साहब भोजन करने के लिए बैठे हुए थे कि एक सेठ साहब धोती-कुर्ता पहने हुए आए। सेठ के हाथ में सूटकेस था। सेठ ने सूटकेस वकील साहब के सामने रख दिया। वकील साहब ने कहा, यह क्या है? वकील अनजान बन रहा था। सेठ ने कहा कि यह आपकी मेहनत है। आपने मेरे झूठे केस को जिता दिया, इसलिए यह मेरी तरफ से आप रखें। वकील टेढ़ी नजर से पत्नी की ओर देखता है कि पत्नी को मालूम पड़े कि मुझमें कैसी कुशलता है कि झूठे केस को भी सच्चा बना दिया, जीत गया, जिससे ये पैसे मिल रहे हैं।

खाना खाने के बाद वकील ने पत्नी की ओर पैसे बढ़ाए। पत्नी ने कहा, नाथ! इसमें से मैं एक पैसा भी नहीं रखना चाहूँगी। जिस केस को आपने जीता है, वह झूठ था। जो सही था उसका क्या हाल हो रहा होगा। उसके घर में कितना कोहराम मच रहा होगा। मन में कितनी पीड़ा होगी। वकील की पत्नी ने कहा कि मुझे ऐसे पैसे नहीं चाहिए। मैं फटी हुई साड़ी पहन लूंगी, किंतु ऐसी खोटी कमाई मुझे नहीं चाहिए।

कई बहनों को पता ही नहीं रहता कि कहाँ से पैसे आ रहे हैं और क्या हो रहा है। बहनें भी उस कार्य के सपोर्ट में रहती हैं। हो सकता है कि कुछ बहनें सपोर्ट में नहीं हों, किंतु अधिकांश बहनें ऐसा करती हैं।

सुनंदा अपनी ननद से कहती है, बहन जी! मैं धर्मपत्नी उसे मानती हूँ जो नीति मार्ग में सहयोगी बने। जो नीति मार्ग में सहयोगी नहीं बने उसको कैसे समझें कि वह धर्मपत्नी है! वह पत्नी हो सकती है, किंतु धर्म सहायिका कैसे होगी! जो धर्म में, नैतिकता में, नीति मार्ग में सहयोगी बनती है उसे ही धर्मपत्नी मानना चाहिए। जो अपने कर्तव्य का पालन करती है, पति को उन्मार्ग में जाने से रोकती हो, उसको धर्मपत्नी मानती हूँ। इसलिए मेरी कोई गलती नहीं है।

सुनंदा की बात सुनकर उसकी ननद विचार करने लगी। वह बोले तो बोले क्या। सही तो सही है। सत्य तो सत्य है। वह सोचने लगी कि हम

समझौता कराने आए हैं। जैसे-तैसे समझौता हो जाए। ऐसे लोग नीति-अनीति को गौण करना चाहते हैं, किसी भी तरह समझौता हो जाना चाहते हैं।

अब आगे क्या स्थिति बनती है, क्या विचार चलता है यह समय के साथ ज्ञात हो पाएगा, किंतु इतना अवश्य है कि लोग सोचते हैं कि कैसे ही करके एक बार समझौता हो जाना चाहिए। काम जम जाना चाहिए। समझौता करा भी देंगे, समझौता हो भी जाएगा, किंतु वह कब तक रहेगा!

हमें न्याय मार्ग पर रहना चाहिए। सत्य मार्ग पर चलना चाहिए। सच्चाई से सारे काम संपन्न हों, अत: ध्यान में रहना चाहिए कि न्याय मार्ग क्या है। यदि न्याय मार्ग पर टिके हैं तो घबराना नहीं चाहिए। अन्याय की ओर कदम नहीं बढ़े। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो मन सुदृढ़ रहेगा।

मन नीति मार्ग पर है, कर्तव्य पथ पर है तो उसे कमजोर बनाने की बात ही नहीं है। जहाँ स्वार्थ, इगो और अहंकार की बात आ जाती है वहाँ मन कमजोर हो जाता है। मन को मजबूत बनाए रखेंगे तो धन्य बनेंगे।

अरुणा जी रंगवाला आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुई हैं। यह पारस जी रंगवाला की पुत्रवधू हैं और गौरव जी रंगवाला की धर्मपत्नी। अशोक जी रंगवाला, पारस जी रंगवाला के बड़े भाई थे।

मेरे खयाल से नीमच की बहुत बड़ी हानि हुई होगी। उनके जाने से नीमच को अपूरणीय क्षति हुई है। वे निर्णायक और ठोस बात बोलने वाले थे। वर्षों पहले श्री अचल मुनि जी की दीक्षा के समय समाज में साधुमार्गी संघ को दबाने की बात हो रही थी। उन्होंने कहा, मैं सारा भोजन गरीबों को खिला दूंगा, किंतु नीति से हटकर बात होगी तो वह स्वीकार नहीं होगी। वह मजबूती कहाँ से आई? वह दृढ़ता कहाँ से आई?

अरुणा जी की 31 की संभावना हो रही है। हिम्मत की कीमत होती है। मन का लड्डू खाती रहती तो कभी का पारणा हो जाता। लोग मन के लड्डू खाते रहते हैं कि ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा। अरे भाई! तुम करोगे तो होगा। केवल मन की कल्पना से कुछ भी होने वाला नहीं है।

गगन मुनि जी म.सा. की आज 22 की तपस्या है और महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की 19 की तपस्या है। सरिता जी मुणोत की कल 62 की

तपस्या थी और आज 63 की तपस्या है।

मन के लड्डू खाने की बजाय क्रियान्वित करें और मन की शक्ति बढ़ाएं। ऐसा करेंगे तो निश्चित ही धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

31 अगस्त, 2023

साधुमार्गी पब्लिकेशन

9

सुविधा से सुरक्षा भली

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

एक अवस्था सुविधा की है और दूसरी अवस्था सुरक्षा की। हमारी पसंद सुविधा है या सुरक्षा? हम किसको पसंद करते हैं?

(श्रोतागण बोलते हैं– हम सुरक्षा पसंद करते हैं)

हमारी पसंद सुरक्षा है, किंतु चाहते सुविधा हैं। कौन नहीं चाहता कि मुझे जीवन में सुविधा नहीं मिले? मेरे खयाल से अधिकांश व्यक्ति सुविधा चाहते हैं। सबके अंतर्भाव रहते हैं कि मुझे सभी सुविधाएं प्राप्त हो जाएं। थोड़ी देर के लिए समझ लो कि सारी सुविधाएं मिल भी गईं, किंतु सुरक्षा नहीं मिली तो वे सुविधाएं कितनी काम आएंगी। सुविधा के साथ सुरक्षा मिले तो सुरक्षा चाहिए।

यदि यह कहा जाए कि सुरक्षा तब मिलेगी जब आप सुविधा का त्याग करेंगे तो आप क्या करेंगे? दोनों में से किसी एक को पसंद करना हो तब आपका मन क्या बोलेगा?

मन जल्दी से सुरक्षा का नहीं बोलेगा, क्योंकि वह पेंडुलम की तरह घूमता रहेगा। मन सोचेगा कि सुरक्षा को स्वीकार करूँ या सुविधा को। वह सोचेगा कि मिली हुई सुविधाओं का त्याग कैसे कर दूँ। कैसे छोड़ दूँ। कौन जाने फिर ये सुविधाएं मिलेंगी या नहीं। शायद कुछ लोग ही सुविधा का त्याग करने वालों की श्रेणी में आएंगे।

ए.सी. में बैठना सुविधा है या सुरक्षा है?

(श्रोतागण बोले- सुविधा है)

मोबाइल में सुविधा है या सुरक्षा है?

(श्रोतागण बोले- सुविधा है)

बैठे हुए गरमी लग रही है तो पानी का फव्वारा चालू करना सुविधा है या सुरक्षा?

(श्रोतागण बोले- सुविधा है)

हम जी सुविधा में रहे हैं और सपने सुरक्षा के देख रहे हैं। हमें सुविधा सुहाती है। हमें सुविधा ज्यादा पसंद है। सुविधा पसंद करते समय यह नहीं सोचते कि एक-एक सुविधा के पीछे, कितने जीवों की घात होती है! यह नहीं सोचते कि एक बार ए.सी. का स्विच ऑन करने से कितने जीवों की घात होती है।

एक बार मोबाइल का स्विच ऑन करने से कितने जीवों की घात हुई?

(श्रोतागण बोले- असंख्येय जीवों की घात हुई)

असंख्येय तेउकाय के जीवों की घात हो जाती है।

भगवान महावीर से पूछा गया कि भगवन्! सबसे खतरनाक शस्त्र क्या है? भगवान महावीर ने सबसे खतरनाक शस्त्र अग्नि को बताया।

पूरे विश्व में सबसे ज्यादा वनस्पतिकायिक जीव हैं। उन्हें दीर्घलोक कहा गया है। वनस्पतिकाय का संसार बहुत बड़ा है। मनुष्य तो बहुत थोड़ा-सा अंश है। वनस्पति ज्यादा है। इसलिए उसे दीर्घलोक कहा गया है। दीर्घलोक शस्त्र का जो खेदज्ञ होता है वही संयम का खेदज्ञ होता है। खेदज्ञ के दो अर्थ हैं- दीर्घलोक शस्त्र से जीवों को होने वाली पीडा को जानने वाला, दूसरा अर्थ- जीवों को उससे होने वाले खेद को समझने वाला।

किसी को जोर से चाँटा लगाने से उसको पीड़ा होगी। उसको वेदना का अनुभव होगा। जिसने कभी चाँटा खाया नहीं, जिसको कभी चाँटा लगा नहीं वह दूसरों को चाँटा लगा दे तो उसको मालूम नहीं पड़ेगा कि चाँटे की वेदना क्या होती है। चाँटे खाने वाला जानता है कि चाँटे की वेदना कितनी

होती है। चाँटा खाने वाला दूसरों को चाँटा लगाने के लिए हाथ उठाएगा तो उसकी स्मृति में आ जाएगा कि चाँटे से वेदना कितनी होती है। वेदना स्मृति में आने से उसके हाथ में थोड़ी शिथिलता आ जाएगी। वह वैसा चाँटा नहीं लगा पाएगा।

जो शस्त्र से होने वाली पीड़ा को समझने वाला है वही संयमी जीवन की आराधना करने में समर्थ हो सकता है। खेदज्ञ का दूसरा अर्थ होता है- ज्ञाता (जानने वाला)। उससे कितनी बड़ी हिंसा होती है उसको जानने वाला। आग लगे तो क्या-क्या भस्म नहीं हो जाता, क्या-क्या नहीं जल जाता। केवल वनस्पति ही जलेगी या मनुष्य भी जलेंगे?

(श्रोतागण बोले- मनुष्य भी जलेंगे)

वनस्पति भी जलेगी, मनुष्य भी जलेगा और पशु-पक्षी भी जलेंगे। इसलिए सबसे भयंकर शस्त्र अग्नि को बताया गया है। तेउकाय को बताया गया है।

लगभग सभी घरों में फ्रिज चालू रहता है। उससे किस काय की हिंसा होती है?

(श्रोतागण बोले- तेउकाय की हिंसा होती है)

ए.सी. और मोबाइल चालू करने से कौन-सा शस्त्र चालू हो गया? तेउकाय जीवों का उसमें घमासान चालू हो गया, वह हमें अनुभव हो रहा है क्या? हमारे भीतर उसकी संवेदना हो रही है क्या? मेरे खयाल से नहीं होती होगी। यदि वह संवेदना हमारे भीतर होती तो अनावश्यक रूप से स्विच ऑन करने की हिम्मत नहीं होती। अनावश्यक रूप से स्विच ऑन कर ही नहीं पाते। हाथ काँपने लगते कि मेरे कारण न जाने कितने जीवों की घात होगी। भगवान महावीर ने जिसको भयंकर शस्त्र बताया है, हम उसी को बढ़ावा दे रहे हैं।

'रुई लपेटी आग को, जो लेता कर मांय'

रुई में लिपटी हुई आग को कोई हाथ में ले तो हो सकता है कि 10-20 सेकेंड तक आग का स्पर्श हाथ को न हो, किंतु अंततोगत्वा उसका स्पर्श होगा। रुई में लिपटी हुई आग रुई को जलाएगी और वह आग व्यक्ति के हाथ तक पहुँचेगी। समझदार व्यक्ति रुई लपेटी आग को हाथ में उठाएगा क्या?

(श्रोतागण बोले– नहीं उठाएगा)

आप जवाब दे रहे हो, क्योंकि आपको अनुभव है कि जीव आग से कैसे जलता है, कैसे हाथ आग से जलता है। आपको पता है कि आग में हाथ डालेंगे तो हाथ जलेगा, इसलिए आप आग में हाथ नहीं डालेंगे। मैं कई बार एक बात कहता हूँ कि किसी ने कुत्ते को रोटी डाली। कुत्ता लपक के रोटी खाने लगा, तब तक रोटी डालने वाले ने कुत्ते पर डंडे का जोर से प्रहार कर दिया। कुत्ते को जोरदार चोट लगी। दूसरे दिन उस कुत्ते को उस व्यक्ति ने फिर रोटी डाली और हाथ में डंडा लिए खड़ा रहा। अब कुत्ता क्या करेगा?

(एक व्यक्ति ने कहा– वह रोटी नहीं खाएगा)

अरे! मैं रोटी खाने या नहीं खाने की बात नहीं कर रहा हूँ। उसकी जीभ लपलपा रही है। वह एक बार रोटी को देख रहा है, एक बार डंडे को देख रहा है, किंतु रोटी में मुँह नहीं डाल रहा है। ऐसा नहीं है कि उसका पेट भरा हो। उसका पेट भरा नहीं था, किंतु पहले पड़ चुकी डंडे की चोट उसकी स्मृति में है। वह मान रहा है कि रोटी में मुँह डाला नहीं कि मुझ पर डंडा पड़ा। वह जान रहा है कि रोटी को मुँह लगाऊँगा तो डंडा पड़ेगा। इसलिए वह रोटी को मुँह नहीं लगा रहा है।

रोटी पकाते समय उसे पलटते हुए तवे पर कभी अंगुलियाँ लगी होंगी, हाथ का स्पर्श अग्नि से हुआ होगा, उसकी स्मृति शायद बनी हुई होगी!

जैसे आग का ताप भयंकर होता है, जैसे आग शरीर को जलाने वाली होती है, वैसे ही 18 पाप आत्मा को झुलसाने वाले होते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ पाप में गिने गए हैं। इन पापों से आत्मा उन्नत होती है या झुलसती है?

(श्रोतागण बोले– झुलसती है)

हमने इनसे क्या बचाव किया, याद भी नहीं है। नरक में भयंकर वेदनाएं वेदीं। परमाधर्मी देवों के थपेड़े खाए। लोग अर्जुन माली से भय खाते थे। राजगृही नगरी से बाहर नहीं निकलते। लोगों को भय रहता था कि बाहर निकलने पर अर्जुन माली मार देगा। खत्म कर देगा। अर्जुन माली का भय लग रहा था, किंतु हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन आदि का भय नहीं लग रहा। आज भी

नहीं है। उससे होने वाली असंयम की प्रवृत्ति से आत्मा को कितनी पीड़ा होती है, उसकी अनुभूति नहीं हो रही है।

भगवान महावीर राजगृही नगरी में पधारे। मगध सम्राट श्रेणिक चतुरंगिणी सेना सहित भगवान महावीर के दर्शन के लिए पहुँचे। मेघ कुमार भी गया था। उसने देशना सुनी। जाने वाले चले गए। जैसे कई लोग व्याख्यान के बाद मांगलिक होते ही रवाना हो जाते हैं। जैसे उसके बाद हो रहे पच्चक्खाण से उनका लेना-देना नहीं रहता वैसे ही जानेवाले लोग चले गए, किंतु मेघ कुमार वहीं रुक गया। मेघ कुमार भगवान महावीर के नजदीक पहुँचा और कहा, भगवन्! 'तमेव सच्चं' यानी जैसा आपने कहा वह एकदम सत्य है। उसमें एक प्रतिशत भी लाग-लपेट की बात नहीं है। परिपूर्ण सत्य है। भगवन्! अलित्तेणं भंते, पलित्तेणं भंते- यह लोक धू-धू करके जल रहा है।

किसको ऐसा महसूस होने लगा?

(श्रोतागण बोले- मेघ कुमार को महसूस होने लगा)

आपने इतने व्याख्यान सुने, आपको किस दिन ऐसा महसूस हुआ। पर्युषण तो निकल गए, हालांकि सामने फिर दूसरे पर्युषण आ रहे हैं। आपको एक बार नहीं दो-दो बार पर्युषण का मौका मिल रहा है। आपने खूब त्याग-तपस्या की। त्याग-तपस्या करना ठीक है, किंतु 18 पापों से झुलसती हुई आत्मा को सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने का क्या उपाय किया? मनुष्य जन्म मिला। समझने के लिए बुद्धि मिली। हम अपना हित-अहित जान रहे हैं, पर समझ नहीं रहे हैं। हम अपना हित सुविधाओं में समझ रहे हैं। बाहर से लोग नीमच दर्शन करने के लिए आए। बहुत आरामदायक स्थानक मिल गया। नीमच वालों ने आपके रहने के लिए अच्छी व्यवस्था की। यदि नीमच वाले कह देते कि कमलनाथ आने वाले हैं। सारी होटलें बुक हो चुकी हैं इसलिए आज आपको पांडाल में सोना पड़ेगा, तब क्या बोलेंगे नीमच वालों को? आप बोल देंगे कि आपके पास व्यवस्था नहीं थी तो चातुर्मास क्यों कराया।

नीमच वालों ने चातुर्मास किसलिए कराया?

(श्रोतागण बोले- धर्मध्यान के लिए कराया)

जिसके लिए इन्होंने चातुर्मास कराया उसके लिए ये स्वयं सक्षम हो

रहे हैं या नहीं हो रहे हैं? कितने लोग धर्मध्यान कर रहे हैं, कितना धर्मध्यान हो रहा है? यह तो निर्वाण मुनि जी म.सा. से पूछने पर ही मालूम पड़ेगा कि कितने लोग धार्मिक कक्षा में आ रहे हैं। लोग बोल देते हैं कि म.सा. मेरे पर जिम्मेदारी है, मुझे यह काम देखना है, वह काम देखना है। पूछेंगे कि किसके लिए काम देखना तो बोलेंगे कि दर्शनार्थी आ रहे हैं, उनके लिए व्यवस्था देखनी है।

आप थोड़ा विचार करें कि आपको साधु-संतों का योग मिला है, व्याख्यान सुनने का मौका मिला है, उसके बावजूद यह संवेदना क्यों नहीं जागृत हो रही है कि मेरी आत्मा का हित किसमें है। मैं हित में जी रहा हूँ या अहित में जी रहा हूँ। मेरे द्वारा क्या किया जा रहा है। कभी शांति के क्षणों में बैठकर विचार करेंगे तो अनुभूति हो पाएगी। नीमच वाले अनेक लोगों को आपकी व्यवस्था में लगने से उनका धर्मध्यान छूटा और आप भी धर्मध्यान का पूरा लाभ न उठा पाएं तो नीमच वालों के धर्मध्यान छूटने का दोष किस पर आएगा?

मेघ कुमार को तत्काल अनुभूति हो गई और वह भगवान से कहता है- '**आलित्ते णं भंते! लोए पलित्ते णं भंते! लोए**' भगवन् संसार में आग लगी हुई है। संसार धू-धू करके जल रहा है।

हम मान लें कि कहीं आग लगी हुई है तो उससे क्या बचाना चाहेंगे? घर में पाँच हीरे रखे हुए हों और प्रत्येक हीरा सवा-सवा करोड़ का हो तो पहले उन्हें बचाने की कोशिश करेंगे। घर में और भी बरतन हैं, फर्नीचर भी हैं उनको बचाने की कोशिश पहले नहीं करेंगे, बल्कि हीरों को बचाने की कोशिश करेंगे।

डॉ. शिवाशंकर त्रिवेदी का नाम आपने कभी सुना होगा। आचार्य भगवन् के प्रति अनन्य भक्ति रखने वाले शख्स थे। एक बार उन्होंने भरे व्याख्यान में बोला कि यदि पूरे विश्व में आग लग जाए और मुझसे कहा जाए कि तुम क्या बचाओगे तो मैं आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के ग्रंथ 'समता दर्शन और व्यवहार' को बचाना चाहूँगा। आपसे यदि कोई पूछ ले कि आप क्या बचाओगे तो आप क्या कहेंगे?

(एक श्रोता ने कहा- हम जैन ग्रंथ बचाएंगे)

डॉ. शिवाशंकर त्रिवेदी जैन नहीं थे, किंतु उन्होंने कहा कि मैं आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. के ग्रंथ 'समता दर्शन और व्यवहार' को बचाना चाहूँगा। क्या है उस ग्रंथ में कि वे कहते थे कि मैं उसको बचाऊँगा? वे कह रहे थे कि सारा कुछ राख हो जाए, किंतु मैं समता दर्शन और व्यवहार को बचाना चाहूँगा।

चंदन मुनि जी (पंजाबी) म.सा. ने जिनवाणी विशेषता पर एक गीत लिखा, जिसमें लिखा गया है– 'भरे हैं इसमें माणक मोती'

क्या भरे हुए हैं?

(श्रोतागण बोले– माणक–मोती भरे हुए हैं)

आपको मोती मिले क्या? हमने आगमों का कितना अध्ययन किया, कितने मोती मिले? संतों ने आपको मोती देने की कोशिश की। 'जैन सिद्धांत बत्तीसी' का अध्ययन कितने लोगों ने किया?

हम तो रईसी में जी रहे हैं। अपने आप कुछ करने की मन:स्थिति नहीं होती। कोई सुना दे तो अच्छा है, पढ़ा दे तो अच्छा है। संतों ने आपको अनमोल माणक मोती देने की कोशिश की, कोशिश कर रहे हैं, किंतु लेने के लिए आपकी तैयारी कितनी है? आपके पास लेने की गुंजाइश कितनी है? यह गुंजाइश नहीं है तो बहुत–सी चीजें आईं और चली गईं।

डॉ. शिवाशंकर ने आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. को राजी रखने के लिए नहीं कहा कि मैं उनका 'समता दर्शन और व्यवहार' ग्रंथ बचाना चाहूँगा। उन्होंने कहा कि यदि मुझसे कोई पूछे कि आप इसको क्यों बचाना चाहोगे तो मेरा जवाब रहेगा कि वापस नए सिरे से पूरे समाज की संरचना इस ग्रंथ के माध्यम से हो सकती है। चाहे पूरा समाज खत्म हो जाए, परंतु इस ग्रंथ के माध्यम से पुन: नए समाज की रचना हो सकती है इसलिए मैं उस ग्रंथ को बचाना चाहूँगा।

(शांतिलाल जी साँड ने कहा– यह ग्रंथ गुजरात में चल रहा है)

चल नहीं रहा है, चलाया जा रहा है, चलाया गया है। जैसे व्हील चेयर को धक्का देकर चलाया जाता है वैसे ही उसको चलाया जा रहा है।

(शांतिलाल जी ने कहा– चलाना पड़ेगा)

हाँ! चलाना पड़ेगा। उसमें जान डालनी पड़ेगी। जैसे घड़ी में चाबी भरने पर वह चलती है वैसे ही उस किताब में चाबी भरेंगे तो वह चलेगी। यह जानना चाहेंगे कि क्यों चलानी पड़ेगी तो मालूम पड़ेगा कि हमारे पास समझ नहीं है। हम केवल पढ़ने के हिसाब से पढ़ रहे हैं। कई लोगों ने 'समता दर्शन और व्यवहार' किताब पढ़ी होगी, किंतु पढ़ने से मिला क्या?

भले ही उसको पढ़ लिया, किंतु तथ्य की पहचान नहीं होगी तो उससे कुछ प्राप्त नहीं कर पाएंगे। दृष्टि खोजने की नहीं रहेगी तो कुछ नहीं मिलेगा। बहुतों ने समता दर्शन और व्यवहार बुक नहीं पढ़ी होगी। बहुत-से लोग उसके बारे में जानते ही नहीं होंगे।

ये सामने जयनगर वाले शांतिलाल जी हैं क्या? खड़े हो जाएं शांतिलाल जी। घुटने में दर्द तो रहता है फिर भी खड़े हो जाएं। समता दर्शन और व्यवहार में क्या है?

(शांतिलाल जी बोले- जैन तत्त्व है)

थोड़ा जोर से बोलो।

उसमें कितने आयाम हैं?

केवल इनसे पूछने की बात नहीं है। यह तो खाली एक नमूना बता रहा हूँ। शौकीन जी का दिल धड़क रहा है कि मेरा नाम नहीं आ जाए। चलो अब आपका नाम आ ही गया है तो आपसे ही पूछ लेते हैं। आप ही बता दो कि समता दर्शन और व्यवहार में क्या है?

(शौकीन जी मुणोत बोले- मैंने बहुत पहले एक बार पढ़ी थी, अभी याद नहीं है)

पत्नी को तो नहीं भूले, किंतु समता दर्शन और व्यवहार को भूल गए। आपने एक बार पढ़ी और अब भूल गए। उसमें क्या पढ़ा, क्या शोध किया आपने? आपकी दृष्टि कितनी गहराई में उतरी।

समता सिद्धांत दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन, समता परमात्म दर्शन। सिद्धांत से लेकर जीवन निष्पति तक पूरा विवरण एक ही ग्रंथ में मिलेगा, किंतु हमें इसे चलाना पड़ रहा है। सच्चाई से जीवन जीना चाहेंगे तो ग्रंथ को चलाना नहीं पड़ेगा। वह स्वत: चलने लगेगा।

व्याख्यान आप भी सुन रहे हैं और मेघ कुमार ने भी सुना था, किंतु मेघ कुमार को लगा कि यह संसार धू-धू करके जल रहा है। उसको अग्नि का ताप लगा, पापों का ताप लगा और उसने भगवान महावीर से कहा, भगवन्! मैं जलते हुए संसार से अपनी आत्मा को बचाना चाहता हूँ। जैसे पाँच हीरों को बचाने की बात आई, जैसे समता दर्शन और व्यवहार को बचाने की बात आई वैसे ही मेघ कुमार कहता है कि मैं अपनी आत्मा को बचाना चाहता हूँ इसलिए भंते! मैं घर जाता हूँ। माता-पिता से अनुमति लेकर शीघ्र ही आपके चरणों में लौटकर साधु जीवन स्वीकार करना चाहता हूँ।

क्या है साधु जीवन में? बताओ तो सही, क्या है साधु जीवन में?

(एक व्यक्ति बोला- साधु जीवन में शांति है)

साधु जीवन में सुरक्षा है। व्याख्यान के प्रारंभ में सुरक्षा और सुविधा पर बात चली थी। आत्मा की सुरक्षा किसमें है?

(श्रोतागण बोले- आत्मा की सुरक्षा साधु जीवन में है)

आपको विश्वास नहीं है। आवाज नहीं आई। अभी नोट सामने आते तो आवाज दूसरी होती। पंचों की जाजम पर बैठते तो अलग ही आवाज होती और यहाँ पर कैसी आवाज आ रही है।

साधु जीवन आत्मा की सुरक्षा का स्थान है। हो सकता है उसमें कई कठिनाइयाँ आएं। ए.सी., कूलर, पंखा, मोबाइल नहीं मिले। अन्य भी बहुत सारी सुविधाएं नहीं मिलें फिर भी साधु जीवन में सुरक्षा है।

सुरक्षा किसमें है?

(श्रोतागण बोले- साधु जीवन में सुरक्षा है)

फिर आप सुरक्षा में क्यों नहीं आ रहे हैं? सुरक्षा की तरफ रुझान क्यों नहीं बन रहा है?

मकड़ी जाल बुनती है और स्वयं फँस जाती है। हम क्या कर रहे हैं? हमें किसी ने संसार में फँसाया है या हम खुद ही फँस रहे हैं?

आपका लक्ष्य गोरखधंधों को बढ़ाने का है या घटाने का? सच बात बताना कि आपका लक्ष्य पैसा बढ़ाने का है या घटाने का?

(श्रोतागण बोले- बढ़ाने का लक्ष्य है)

घटाना चाहेंगे तो क्या देर लगेगी। एक चेक पर हस्ताक्षर किया और पैसा घट गया। कबीरदास जी कह गए हैं–

'दान दिए धन ना घटे, कह गए दास कबीर'

दान दिए धन नहीं घटता, पर दान दिया जाए तब ना। लोग नाम के लिए पैसे देते हैं। सुनहरी स्याही से नाम आना चाहिए। नाम आए तब तो कितने ही पैसे ले लो। जहाँ नाम आता है, वहाँ पैसे देने को लोग तैयार रहते हैं। नाम नहीं आए तो बोलेंगे, भाई! सीधी–सी बात है बिना नाम के मन नहीं मानता।

नाम के पीछे दिया जाने वाला दान बचेगा नहीं, वह समाप्त होगा, किंतु सच्चे मायने में दिया गया दान कभी समाप्त होने वाला नहीं है। वह पुण्य रूप बन जाता है।

प्राय: सबको सुविधा चाहिए, सुरक्षा नहीं। दोनों मिल जाए तो बहुत बढ़िया। चाहते तो दोनों को हैं, किंतु दोनों मिलेंगे कैसे। आरंभ और परिग्रह संसार में फँसाने का काम करते हैं। आरंभ और परिग्रह को पाप की जड़ माना गया है। आपका मन परिग्रह बढ़ाने में रहता है। मन परिग्रह में रहेगा तो आत्मा की सुरक्षा नहीं हो पाएगी।

'रूपली पल्ले तो रोई में चले'

पैसा मिले तो लोग कहीं भी जाने को तैयार हैं। पैसों के लिए गुलामी करने को तैयार हो जाते हैं, गुलाम बन जाते हैं। पैसों के पीछे गुलामी करने वाले बहुत मिलेंगे। थाली और प्याली के मित्र बहुत मिलेंगे, पर सच्चा मित्र मिलना बहुत कठिन है। सच्चे मित्र की जगह अलग ही होती है, किंतु हमें सच्चे मित्र की आवश्यकता कहाँ है? हमें तो हाँ सा, हाँ सा करनेवाला चाहिए। हाँ भरने वाला मित्र चाहिए। ऐसे लोगों की कमी नहीं है। ऐसे लोग बहुत मिल जाएंगे, किंतु एक सच्चा मित्र मिलना बहुत मुश्किल है।

सुनंदा वैसी औरत नहीं थी। वह अपने कर्तव्य पर दृष्टि रखती थी।

'जीवुं छे तो धर्म ना काजे, मरवुं छे तो धर्म ना काजे'

कर्तव्य धर्म के लिए जीना चाहिए। मरना तो सबको है। मरने से बचाने वाला कोई नहीं है। मौत के मुँह में सबको जाना पड़ेगा, किंतु जो कर्तव्य धर्म का पालन करेगा, उसका नाम अमर हो जाएगा।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
उन्मार्ग से सन्मार्ग लाना, इसमें कभी ना उसे लज्जाना,
आए कष्ट अनेक, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा कहती है, बहन जी! आप जो कह रही हैं, मैं समझ रही हूँ। आप अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रही हैं किंतु मेरा कर्तव्य भी मेरे ध्यान में है। उन्मार्ग से सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना पत्नी का फर्ज है। यदि पति उन्मार्ग पर जा रहा हो तो उसको सन्मार्ग पर लाने का पत्नी का उद्देश्य होता है। पत्नी का कर्तव्य यह नहीं होता कि पति को सन्मार्ग से उन्मार्ग की ओर धकेल दे। ऐसा करनेवाली, धर्मपत्नी नहीं कहलाएगी। धर्म सहायिका नहीं कहलाएगी। चाहे कितना भी कष्ट आ जाए, पत्नी का लक्ष्य रहना चाहिए कि मेरे पति उन्मार्ग में नहीं, सन्मार्ग में बढ़ें।

चेलना महारानी ने राजा श्रेणिक को सन्मार्ग की तरफ मोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। श्रेणिक राजा पहले जैन धर्म नहीं मानता था और चेलना महारानी जैन धर्म की आराधना करनेवाली थी। दोनों की आपस में अपने-अपने धर्म की बातें होती थीं। चेलना महारानी ने अपने पति को सही रास्ते पर लाने का पूरा प्रयत्न किया। वह सफल भी हुई। श्रेणिक राजा को भगवान महावीर की लगन लग गई। ऐसी लगन लगी कि वह भगवान महावीर का भक्त ही नहीं, परमभक्त बन गया।

सुनंदा कह रही है, बहन जी! मैं अपने कर्तव्य को समझ रही हूँ। कितना भी कष्ट आ जाए, पत्नी को घबराना नहीं चाहिए। उसको अपने पति को उन्मार्ग से सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। सुनंदा ने कहा कि आप अपने भाई से पूछ लीजिए कि मैंने कभी उनसे कोई नाजायज माँग की हो, मैंने कभी उनसे गलत काम करवाया हो तो आप उनसे पूछ सकती हैं।

ननद कहती है, भाभी! इतना तो मैं भी समझ रही हूँ कि आपने ऐसा काम कभी नहीं किया। मैं यह भी समझ रही हूँ कि आपके कारण से घर व्यवस्थित हो गया, नहीं तो सुरेश की संभाल होना बहुत मुश्किल काम था, फिर भी घर में तनाव का वातावरण नहीं रहना चाहिए। उस वातावरण को कैसे शांत किया जा सकता है उस पर विचार होना चाहिए।

घर का वातावरण कैसे शांत होगा? सुरक्षा के साथ होना या सुविधा के साथ?

(श्रोतागण बोले– सुरक्षा के साथ होना)

जरूरत सुरक्षा की है और चाहते हैं सुविधा के साथ समन्वय हो। सुविधा के साथ समन्वय कितने दिनों तक चलेगा। आज सुविधा है तो जरूरी नहीं कि कल भी रहे, किंतु सुरक्षा का सूत्र रहेगा तो उसे कोई छीन नहीं पाएगा। सुविधा रहे या नहीं रहे, सुरक्षा सदा रहनेवाली है। जैसे डॉ. शिवाशंकर ने कहा कि सारे विश्व में आग लग जाए तो मैं 'समता दर्शन और व्यवहार' को बचाना चाहूँगा वैसे ही हमारे पास भी सुरक्षा का हैंडल रहना चाहिए।

आपके पास बी.एम.डब्ल्यू गाड़ी है, किंतु उसके ड्राइवर के हाथ काँप रहे हों तो क्या वह आपको सही सलामत गंतव्य पर पहुँचा पाएगा? गाड़ी कोई भी हो, ड्राइवर भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। ड्राइवर सही होना चाहिए। उसके हाथ काँपने नहीं चाहिए। जैसे ड्राइवर के हाथ नहीं काँपने चाहिए वैसे ही मनुष्य जन्म सार्थक करने के लिए हमारे हाथ सुदृढ़ होने चाहिए।

मेघ कुमार ने भगवान महावीर से कहा– मैं अपनी आत्मा की रक्षा करना चाहता हूँ। मैं तत्काल घर जाता हूँ और माता–पिता से अनुमति लेकर आपके चरणों में प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूँ। भगवान महावीर कहते हैं–

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह'

अर्थात् हे देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो। प्रतिबंध मत करो, शुभ कार्य शीघ्र सम्पन्न होना चाहिए, क्योंकि परिणाम कब बिगड़ जाए, पता नहीं पड़ता है।

मेघ कुमार घर गया। उसने माता–पिता से अनुमति लेकर साधु जीवन स्वीकार किया। उसने सुविधाओं का सूत्र छोड़ दिया। मेघ कुमार को आराम से खाना मिल रहा था। आराम से रह रहा था। उसके पास बहुत बड़ा शयनकक्ष था। सारी सुविधाएं उपलब्ध थीं किंतु उसने सुविधाओं का सूत्र छोड़कर सुरक्षा का सूत्र पकड़ लिया।

बंधुओ! हमारे सामने वैज्ञानिकों ने बहुत सारी सुविधाएं उपलब्ध कर दी हैं, किंतु उनका दुरुपयोग दुविधाओं में ले जाने वाला होगा। असुरक्षा में ले

जाने वाला होगा। गाड़ी कितनी स्पीड से चले तो ठीक है?

(कई श्रोतागण बोले- 80 की स्पीड में चले तो ठीक है)

ड्राइवर जितना कंट्रोल कर सके, उससे ज्यादा स्पीड नहीं होनी चाहिए। चाहे 100 की स्पीड हो, 150 की हो, 180 की हो या 200 की हो। गाड़ी ड्राइवर के कंट्रोल में होनी चाहिए। स्टेयरिंग ड्राइवर के कंट्रोल में है तो कोई भी स्पीड हो, नहीं तो 80 की स्पीड भी ज्यादा है। 80 की स्पीड में ही उसके हाथ काँप रहे हों तो क्या होगा?

सुरक्षा में जीएं। संयम का जीवन जीएं। व्रत-नियमों का जीवन जीएं। आस्रवों को छोड़ने का लक्ष्य बनाएं। जितना हो सके, उतना त्याग करें और अपने आपको लाभान्वित करें। त्याग-प्रत्याख्यान करके अपनी आत्मा को भावित करेंगे तो आत्मा निश्चित रूप से सुरक्षित स्थान पर होगी। ऐसा नहीं है कि गृहस्थ में रहते हुए सारे पाप करने ही पड़ते हैं। बहुत-से पापों से बचा जा सकता है, आज विचार कर लेना। 12 व्रत या 14 व्रत की किताब में से नियम देखो और राइट का निशान लगाओ कि इन पापों से अपने आपको हटाना है। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे।

तपस्या का दौर चल रहा है। गगन मुनि जी म.सा. की 23 की तपस्या है। महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की 20 की, अरुणा जी रंगवाला की 31 की तपस्या है। कल इनका मासखमण पूर्ण हुआ। मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुई। शासननिष्ठ परिवार है। इस परिवार में एक और भी तपस्या चल रही है। हम भी इनसे प्रेरणा लें और अपने आपको धन्य-धन्य बनाएं। फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

01 सितंबर, 2023

10

पाप की आग से बचें

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'पत्तेयं पुण्णपावं'

प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने पुण्य और पाप होते हैं। मगध सम्राट श्रेणिक के युग में अभय कुमार भी हुआ और कालशौकरिक कसाई भी हुआ। दोनों ने मानव तन पाया।

किसने पाप किया और किसने पुण्य कमाया?

कालशौकरिक कसाई ने पुण्य की बदौलत मनुष्य जीवन प्राप्त कर लिया। उसे मनुष्य का शरीर मिल गया, किंतु उससे उसको जो लाभ उठाना चाहिए था, वह नहीं उठा पाया। कुछ पाप कर्मों के उदय से उसकी दिशा अलग हो गई। वह हिंसा करने लगा। उसने मार-काट करना शुरू कर दिया। वह रोजाना पाँच सौ पाड़ों का वध कर रहा था।

कालशौकरिक और अभय कुमार की बात से अलग हटकर हम विचार करें कि मनुष्य जन्म प्राप्त कर हम जो कर रहे हैं वह आत्महित में हो रहा है या स्वार्थ में! हमारी क्रियाएं पुण्य प्राप्त कराने वाली हैं या पाप का बंध कराने वाली!

'रुई लपेटी आग को, जो लेता कर मांय'

रुई लपेटी हुई अग्नि को हाथ में लेने पर हाथ जलेगा। उसी न्याय के अनुसार पाप से आत्मा कष्ट पाएगी। पाप से आत्मा दुख प्राप्त करती है, कष्ट

प्राप्त करती है। उसके सामने कठिनाइयाँ आती हैं। पुण्य प्रबल होता है तो सारे मार्ग अपने आप ही खुल जाते हैं, बाधाएं नहीं आतीं। बाधाएं आती भी हैं तो दूर हो जाती हैं। पुण्य कमाना दुष्कर होता है, कठिन होता है, जबकि पाप कर्म निरंतर बँध रहा है। एक भी क्षण ऐसा नहीं है, जिसमें पाप कर्म का बंध नहीं कर रहे हों, पाप कर्म का उपार्जन नहीं किया हो। अभी धर्म स्थान में बैठे हुए हैं फिर भी पाप कर्म का बंध हो रहा है।

आप विचार करें कि पाप कर्म का बंध क्यों हो रहा है! अभी सामायिक में बैठे हैं, व्याख्यान सुन रहे हैं, धर्म की बातें सुन रहे हैं फिर पाप कर्म का उदय क्यों होगा? घर में बिजली का मीटर लगाने पर मिनिमम चार्ज लगेगा या नहीं लगेगा?

(श्रोतागण बोले- मिनिमम चार्ज लगेगा)

वैसे ही हम भी संसार में जी रहे हैं। अभी हमारा परिपूर्ण त्याग नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में चारित्र मोह कर्म का बंध हो रहा है। ज्ञानावरणीय कर्म का बंध हो रहा है। दर्शनावरणीय कर्म का बंध हो रहा है। अंतराय कर्म का बंध हो रहा है। ये सारे कर्म पाप के हैं। ज्ञानावरणीय कर्म का बंध क्यों होता है? ज्ञानावरणीय बंध का कारण क्या है?

उसका कारण है ज्ञान के प्रति उपेक्षा होना। ज्ञानी के प्रति उपेक्षा होना। ज्ञान के साधनों के प्रति उपेक्षा होना। ज्ञान प्राप्ति के लिए मन में भावना पैदा नहीं होना। ज्ञान प्राप्ति की रुचि नहीं होना। रुचि नहीं होने को द्वेष कहा गया है।

'द्वेष अरोचक भाव'

जिस कार्य में हमारी रुचि नहीं है, भले ही उसके प्रति द्वेष नहीं हो, किंतु उसके प्रति अनुराग के भाव नहीं हैं, वह द्वेष का प्रतीक है। यहाँ उपस्थित लोगों में से कितने लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्सुक होते हैं? प्रेरणा देने के बावजूद कई लोग यह सोच लेते हैं कि हमारे वश की बात नहीं है। कुछ ऐसा भी सोच लेते हैं कि हमें क्या लेना-देना ज्ञान से! आज याद करेंगे, कल भूल जाएंगे। इस तरह ज्ञान प्राप्ति का विचार नहीं बन पाना, जिज्ञासा भाव पैदा नहीं होना, ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है और उसके साथ बंध भी हो रहा है। हमारी

सम्यक्त्व सुदृढ़ होगी तो हमारे मन में जिज्ञासा जगेगी।

आपने जन्म से जैन धर्म को प्राप्त कर लिया, किंतु उसमें जो पुरुषार्थ किया जाना था वह नहीं किया गया। जो कोशिश होनी चाहिए थी वह नहीं हो पा रही है। आप हाथ में तराजू लेकर देखना कि धन कमाने के प्रति लगन ज्यादा है या ज्ञान प्राप्त करने की! शायद धन कमाने की लगन ज्यादा होगी। खूब धन मिलने के बावजूद आदमी की लालसा बढ़ती है, घटती नहीं। ज्ञानार्जन की बात सामने आने पर उसे झपकी तो नहीं आने लगती।

यदि आपको नौ तत्त्वों का ज्ञान नहीं है तो सारे व्रत-नियम अधूरे हैं। कोई कितना भी व्रत-नियम स्वीकार कर ले, उसे नौ तत्त्वों का ज्ञान नहीं है तो वह व्रतों की सही आराधना नहीं कर पाएगा।

'जो जीवे वि न याणति, अजीवे वि न याणति
जीवाऽजीव अयाणंतो, कह सो नाहिइ संजमं?'

जो जीव-अजीव को नहीं जानेगा, जीव-अजीव के भेद को नहीं जानेगा, वह व्रतों की आराधना कैसे करेगा। चलते-फिरते जीव हमारी नजर में आते हैं इसलिए हमने उन्हीं को जीव मान्य किया, जबकि भगवान महावीर ने ऐसे जीव भी निरुपित किए हैं जो चलते-फिरते नहीं हैं। शास्त्र यह कहता है कि यदि किसी ने साधु जीवन स्वीकार कर लिया, दीक्षा स्वीकार कर ली और उसे छह जीवनिकाय अर्थात् पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक व त्रसकायिक जीवों का ज्ञान नहीं है तो उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह जीव के स्वरूप को जानेगा नहीं तो उनकी आराधना कैसे कर पाएगा। वह उनकी विराधना से कैसे बच पाएगा।

कालशौकरिक कसाई क्या कर रहा था? स्वयं को पाप से भर रहा था या पुण्य कमा रहा था?

(श्रोतागण बोले- पाप से भर रहा था)

हम उस प्रकार का पाप तो नहीं कर रहे होंगे, किंतु मन से, वचन से पाप हो जाते हैं। हमारा मन सदा दर्पण की भाँति रहता है या कैमरे की तरह? दर्पण हमारी छवि दिखाता है जबकि कैमरे की आँख दूसरे की तरफ होती है।

दूसरों को देख-देखकर मन में पता नहीं, कितने विचार पैदा हो जाते हैं। सारे विचार शुभ ही होते हैं या अशुभ भी होते हैं?

(श्रोतागण बोले- अशुभ भी होते हैं)

शुभ विचार ज्यादा होते हैं या अशुभ?

(श्रोतागण बोले- अशुभ विचार ज्यादा होते हैं)

कोई सामायिक कर रहा है तो कहते हैं कि यह सामायिक तो कर रहा है, पर उसमें आलस मोड़ रहा है, कटके निकाल रहा है। कहने वाला स्वयं सामायिक में बैठा हुआ दूसरों को देख रहा है कि कौन क्या कर रहा है। उसने कभी यह देखने की कोशिश नहीं की कि मैं क्या कर रहा हूँ? यह 'दीपक तले अंधेरा' उक्ति को चरितार्थ करना है।

दीपक दूसरों को प्रकाश देता है, किंतु उसके अपने तल में अंधेरा रहता है। मयूर के पंख बड़े सुंदर होते हैं, आकर्षित करने वाले होते हैं, किंतु जब वह अपने पैरों को देखता है तो उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

सामायिक में ही नहीं अन्य समय में भी हमारी आँखें बाहर की तरफ ज्यादा देखती हैं। बाहर देखकर मन में ऊहापोह चालू हो जाता है। सी.सी.टी.वी कैमरा भी बाहर की तरफ देखता है, किंतु वह अपने भीतर ऊहापोह पैदा नहीं होने देता। पर हमारी मति ऐसी है कि हम ऊहापोह में पड़ जाते हैं। ऊहापोह में जाने का मतलब है मन को अस्वस्थ बना लेना। मन प्रतिक्रिया में गया नहीं कि मन की स्वस्थता गायब हुई नहीं। मन की स्वस्थता गौण हो जाती है। बाधित हो जाती है। अस्वस्थ मन से की गई क्रिया विशेष फलदायी नहीं बन पाएगी।

सुबाहु कुमार भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हुआ है। उसने भगवान की देशना सुनी और भगवान से निवेदन किया कि भगवन्! धन्य हैं वे लोग जो आपकी अमृतवाणी सुनकर अगार धर्म को छोड़कर साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं। वे सेठ, साहूकार, राजा, सेनापति धन्य हैं। किंतु "**णो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए**" अर्थात् जैसे वे लोग साधु जीवन स्वीकार कर रहे हैं, दीक्षा ले रहे हैं, मैं अभी वैसा सामर्थ्य अपने भीतर अनुभव नहीं कर रहा हूँ, इसलिए गृहस्थ में रहते हुए, पाँच

अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत को स्वीकार करना चाहता हूँ।

श्रावकों के लिए भी कई विशेषण आए हैं। उनमें एक विशेषण है '**अभिगय जीवाजीवे।**' इसका अर्थ होता है जो जीव-अजीव को जानने वाला हो गया। सुबाहु कुमार भी जीव-अजीव को जानने वाला हो गया। उसने भगवान महावीर से व्रत-नियम स्वीकार किए और लौट गया। गौतम स्वामी के मन में जिज्ञासा पैदा हुई। वे उठकर भगवान महावीर के समक्ष पहुँचे। भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया और कहा, भगवन्! यह सुबाहु कुमार आने वाले समय में क्या आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होगा? अगार से अनगार धर्म को स्वीकार करने में समर्थ है? भगवान महावीर ने कहा- 'हंता प्रभु! यानी वह समर्थ है अर्थात् वह भविष्य में साधु जीवन स्वीकार करेगा।

कई वर्षों तक श्रावक व्रतों की आराधना करते हुए एक बार सुबाहु कुमार रात्रि के समय में धर्म जागरणा कर रहा था। उसके मन में संकल्प पैदा हुआ, अध्यवसाय पैदा हुआ कि मैंने संसार के बहुत सारे कार्य किए हैं। उसी संदर्भ में उसने अपने जीवन का पर्यालोचन किया। उसने अपनी शक्ति को तौला और मन में विचार किया कि यदि ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान महावीर हस्तिनापुर पधारेंगे तो मैं भगवान के चरणों में साधु जीवन स्वीकार कर लूँगा।

कल मैंने मेघ कुमार के विषय में बताया था। '**आलित्ते णं भंते!** उसने कहा, भगवन्! यह संसार धू-धू करके जल रहा है। यह अग्नि का ताप लगने वाले को ही लगता है। हमें अभी उस अग्नि का ताप महसूस नहीं हो रहा है।

अग्नि की तरफ से निकलने पर गरमी लगती है या नहीं? बारह बजे के बाद सड़क पर नंगे पैर चलेंगे तो पैर जलेंगे। यह स्पर्शेंद्रिय से जाना है। सड़कें बहुत गर्म हो गईं तो पैर जलेंगे। कहीं आग लगी हो और उसके पास से निकलेंगे तो गरमी लगेगी। उस गरमी का अनुभव तो होगा किंतु संसार में लगी पापकर्म की आग का, विषय-वासना की आग का, जन्म-मरण की आग का अनुभव नहीं हो रहा है। हम अनभिज्ञ हैं ऐसी बात नहीं है। ज्ञान है। जान रहे हैं कि जन्म लेने वाला मरेगा। जन्म लेने वाला सदा अमर रहने वाला नहीं है, किंतु यह जानने के बाद भी भीतर जो संवेदना पैदा होनी चाहिए थी वह नहीं हो पाती।

इसी को लक्ष्य में लेकर यह बात कही गई है कि 'रुई लपेटी आग को, जो लेता कर मांय' यानी रुई लपेटी आग को जो हाथ में लेगा उसका हाथ जलेगा। जैसा न्याय यहाँ पर बताया गया है, वैसा ही न्याय पापकर्म का है, वह आत्मा को दुखी बनाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति के पाप और पुण्य अपने-अपने होते हैं। दूसरों के कर्म का भोग दूसरा नहीं करता। जो कर्मों का उपार्जन करता है, जो कर्मों का बंध करता है उसी को भोगना पड़ता है। कर्म कर्ज का रूप नहीं है कि बाप का कर्जा बेटा चुकाए। बाप का कर्ज बेटा चुकाता है, दादा का कर्ज पोता भी चुकाता होगा, किंतु कर्म खुद ही भोगने पड़ेंगे।

सुमित मुनि जी म.सा. फरमा रहे थे कि मोक्ष जाना है तो इच्छाओं का अंत करना पड़ेगा। आरंभ-परिग्रह छोड़ना पड़ेगा। कौन-कौन तैयार है मोक्ष जाने के लिए? शेख चिल्ली की तरह मत बोलना। शेख चिल्ली बातें तो बहुत करता था, किंतु करता-धरता कुछ नहीं था। शेख चिल्ली की तरह कल्पना करना आसान है, किंतु अंतस् में भावना पैदा होना दूसरी बात है। अभी आपकी भावना अंकुरित भी हुई या नहीं? मोक्ष जाने की भावना का अंकुरण भी हुआ या नहीं? अंकुर पैदा हो गया तब तो बीज में परिवर्तन हो गया। अंकुरण सदा अंकुरण के रूप में नहीं रहता या तो वह पनपेगा या उजड़ जाएगा।

क्या आपके भीतर मोक्ष की भावना का अंकुरण हो चुका है? अंकुरण होने का मतलब है, संवेदना जागृत होना। अंकुरण होने का अर्थ है किसी भी जीव की विराधना होने से मन काँपना। यह विचार आना कि मेरे कारण से कितने जीवों की घात हो रही है, हिंसा हो रही है। कई लोग दिखावे के लिए बोलते हैं कि म.सा.! बहुत हिंसा हो रही है। दिखावा नहीं, आंतरिक भावना जगनी चाहिए कि मेरे निमित्त से क्यों हिंसा का संबंध जुड़े।

सुबाहु कुमार के मन में विचार हुआ कि संसार में रहते हुए ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जिससे हिंसा से बचा जा सके। हिंसा से बचने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना पड़ेगा। अनगार धर्म स्वीकार करना होगा।

घर में बिजली-पानी का कनेक्शन लिया हुआ होता है तो चाहे आप बिजली का उपयोग करो या मत करो, मिनिमम चार्ज तो लगेगा। मिनिमम चार्ज

नहीं देना है तो सीधा-सा उपाय है कि लाइन कटवा ली जाए। लाइन कटवा लेने से तद्जन्य खर्चा नहीं आएगा। पैसे नहीं देने पड़ेंगे। वैसे ही हिंसा से कनेक्शन कट करने के लिए तीन करण, तीन योग से प्रतिज्ञा ली जाती है, करूंगा नहीं, करवाऊंगा नहीं और करनेवाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा। करनेवाले को अनुमति भी नहीं दूँगा। किसी को हिंसा करते देखकर मन में हर्ष भी पैदा नहीं होगा कि बहुत बढ़िया कर रहा है।

एक सम्राट ने भव्य भवन बनवाया। उसने अपने दीवान को भवन दिखाकर पूछा, कैसा लगा? दीवान ने कहा, राजन! आप जैसे लोग ही ऐसा भवन बना सकते हैं। इसका मतलब क्या हुआ कि आप जैसे लोग ही ऐसा भवन बना सकते हैं?

(एक श्रोता ने कहा- इसका मतलब है कि बड़े लोग ही ऐसा भवन बना सकते हैं)

इसका मतलब यह नहीं है। इसका मतलब है कि आप जैसे लोग ही जो आरंभ-परिग्रह में रचे-पचे हैं वे ही ऐसा भवन बना सकते हैं व खुश हो सकते हैं। जो आरंभ-परिग्रह से उपरत हो जाएगा, वह ऐसा भवन बनाने की कोशिश नहीं करेगा।

ब्राह्मण बनकर आया इंद्र नमिराज से कहता है कि राजन! आप ऐसा सुंदर भवन बनाओ जिससे आपका नाम अमर हो जाए। नमिराज ऋषि आरंभ परिग्रह से उपरत हो गए थे। उन्होंने कहा, जिसको अपने घर का भरोसा नहीं होगा, वही नया भवन बनाएगा। मुझे मेरा घर दिख रहा है।

हमें अपना घर दिख रहा है क्या? नमिराज ऋषि को कौन-सा घर दिख रहा था? उनको दिख गया कि मेरा शाश्वत घर कहाँ पर है। उनमें अंकुरण हो गया था व पौधा पनप गया था। फल लगने की तैयारी हो रही थी। ऐसी भावना जगे तो पाप से उपरत होने का मन होता है। पाप से हटने का मन स्वत: होता है। परिग्रह से मुक्त होने की भावना स्वत: बन जाती है। कोई बोले या न बोले, किंतु अमूमन लोगों की भावना धन बढ़ाने की होती है। परिग्रह बढ़ाने की होती है। आपकी भावना धन बढ़ाने की है या कम करने की? कई लोग पच्चक्खाण लेते हैं। परिग्रह परिमाण व्रत स्वीकार करते हैं, पर क्या करते हैं

परिमाण? दस करोड़ है तो सौ करोड़ की मर्यादा। सौ करोड़ है तो एक लाख करोड़ की मर्यादा। मर्यादा में भी लालसा मौजूद है।

आनंद श्रावक ने निर्णय कर लिया था कि अपने पास उपलब्ध धन को और नहीं बढ़ाना। धन नहीं बढ़ाने का मतलब यह नहीं था कि व्यापार नहीं करना। व्यापार करते हुए उसमें हुए लाभ का संग्रह नहीं करना। जो लाभ होगा वह धन खर्च हो जाएगा। व्यय हो जाएगा। परिवार, समाज या राष्ट्र के लिए उस धन का व्यय होगा। जितनी संपत्ति है, उससे ज्यादा बढ़ाना नहीं।

कितनी पूँजी के बाद आप पूँजी बढ़ाने पर विराम लगा देंगे? सौ करोड़ की पूँजी पर विराम लग जाएगा या एक हजार करोड़ पर? दस करोड़ की पूँजी है तो उस पर ही विराम लगा देंगे या सौ करोड़ तक बढ़ाना है? आप व्यापार नहीं भी करेंगे तो पैसे ब्याज पर देने चालू कर देंगे। पैसा से पैसा कमाने की कोशिश करेंगे। इससे लोभ छूटता नहीं है। और जब तक लोभ नहीं छूटता, तब तक आत्मा का ऊपर उठना मुश्किल है। लकड़ी का पाटा हलका है या भाटा?

(श्रोतागण बोले– लकड़ी का पाटा हलका है)

तिराएगा कौन? पाटा तिराएगा या भाटा?

(श्रोतागण बोले– पाटा तिराएगा)

न तो पाटा तिराएगा और न ही भाटा तिराएगा। तिराएगी भावना। किंतु व्यवहार में बात करें तो पाटा हलका होता है। लकड़ी का पाटा हलका होता है वह तिर जाता है। भाटा तो पानी में डालते ही डूब जाएगा। जिसे तैरना नहीं आए उसकी दशा क्या होगी? जिसे तैरना नहीं आएगा वह डूब जाएगा। ममत्व त्याग परिग्रह परिमाण हमें तिरना सिखाता है।

सुनंदा का चारित्र चल रहा है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
कभी ना पार्टी में तुम जाती, जनता कितनी बातें सुनाती,
नजरें तब झुक जाए, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा ने अपनी ननद से कहा, मैंने कोई गलत काम नहीं करवाया। मैंने आपके भाई पर कभी कोई प्रेशर नहीं डाला कि यह काम आपको करना ही

पड़ेगा। मैंने कोई प्रेशर दिया हो, गलत काम करवाया हो तो आप अपने भाई से पूछ लीजिए। ऐसी भावना मेरे मन में कभी नहीं आई।

ननद ने कहा– 'वह तो मैं भी जानती हूँ। इतना तो मैंने भी अनुभव किया है, किंतु दुनिया बातें करने में नहीं रुकती। विजय के साथ तुम कभी पार्टी में नहीं गई, सभा–सोसाइटी में नहीं गई तो लोगों में चर्चा होती है कि आपसी मतभेद होगा। आपस में पटती नहीं होगी। लोगों को तो मौका मिलना चाहिए।' ऐसी बातें करने से पुण्य होगा या पाप?

(श्रोतागण बोले– पाप होगा)

आप तो ऐसी बातें नहीं करते होंगे?

(श्रोतागण बोले– करते हैं)

गर्व से कहते हो कि करते हैं। गर्व से कहो हम भारतीय हैं। हमारा देश चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव में जाने वाला पहला देश बन गया, इसलिए गर्व क्यों नहीं होगा। जिस समय गर्व भरी बातें करते हैं, उस समय महसूस नहीं होता, किंतु जिस समय उसका उदय आएगा उस समय पछतावा होगा कि क्या हो गया, कैसे हो गया। जो कर्म कार्मण शरीर में फिट हो गए वे उदय में आएंगे। उसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। यदि आपको विश्वास करना है, भरोसा करना है तो महाभारत से हो सकता है।

महाभारत में उल्लेख है कि द्रौपदी ने दुर्योधन को लक्ष्य रखकर प्रसंगवश कहा कि अंधे के अंधे ही होते हैं। प्रसंग यह था कि जहाँ पानी था वहाँ दुर्योधन ने कपड़े ऊपर नहीं किए और जहाँ पानी नहीं था वहाँ कपड़े ऊपर कर लिए। यह देखकर द्रौपदी के मुँह से हँसी–हँसी में बात निकल गई कि अंधे के अंधे ही होते हैं। द्रौपदी की वह बात दुर्योधन को चुभ गई। उसका परिणाम महाभारत के रूप में आया।

छोटी बात भी बड़ी बन जाती है। छोटा बीज भी वट वृक्ष बन जाता है। वट वृक्ष का बीज छोटा–सा होता है किंतु बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है। तिल का ताड़ होने में देर नहीं लगती है।

सुनंदा ने कहा, पार्टी में नहीं जाने की बात तो मेरे सामने पहली बार आई है।

शर्मिला ने कहा कि सुरेश भी अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है। उसकी साज-संभाल होनी चाहिए, किंतु उसको लेकर झमेले में क्यों पड़ना। कोई-न-कोई हल निकाल लेना चाहिए। सोच-समझकर विचार कर लेना चाहिए। उसने कहा, देखो भाभी! तुम स्वयं विचार करो, तुम उसके पीछे बहुत हठ करती हो, यह ठीक है, किंतु विजय का इसके साथ खून का रिश्ता है। तुम्हारा तो इसके साथ खून का रिश्ता नहीं है। विजय इसका सहोदर भाई है। विजय उसके लिए जो भी व्यवस्था कर रहा है, उसमें तुम्हें क्यों एतराज है। वह चाहे अनाथालय भेजे या पागलखाने में भरती कराए, तुम्हें क्यों एतराज करना। तुम्हें ऐसा लग रहा है कि लोग तुम्हारे बारे में कहेंगे कि देखो! भाभी ने इसको नहीं परोटा (निभाया) इसलिए भाई को अनाथालय-पागलखाने में भरती कराना पड़ रहा है। ऐसा यदि विचार हो तो मैं उसका उपाय बता देती हूँ। तुम बोल देना कि उनकी अपनी सोच थी, मैं क्या कर सकती।

सलाह देने वाले लोग बहुत हैं। हर सलाह को मानना जरूरी नहीं होता। किसी को कुछ बहाना बनाना होता है तो वह किसी की आड़ ले लेता है कि उसने मुझे ऐसी सलाह दी, इसलिए मैंने ऐसा किया। किसी ने कुछ सलाह दी, किंतु तुम्हारा मन क्या कहता है। तुम्हारा मन यदि स्वीकार नहीं करता तो दी गई सलाह मान्य नहीं होती। मन जिस सलाह को मंजूर करता है उसे ही मानते हैं। कोई आपको सलाह दे दे कि अपनी प्रापर्टी मेरे नाम कर दो तो उसके नाम कर दोगे क्या?

सुनंदा ने कहा, बहन जी! आप जो बात कह रही हो, उस बात पर विचार करो। आपने ऐसा कैसे विचार कर लिया कि सुरेश को अनाथालय भेज दें। इस घर पर सुरेश का भी अधिकार है। जिस घर पर जिसका अधिकार है उसको वहाँ से हटाना नीति का काम नहीं है। लोग क्या विचार करेंगे इसकी मुझे चिंता नहीं है। मैं, नीति की बात जानना चाहती हूँ। नैतिकता इसमें नहीं है कि घर के अपंग, दिव्यांग सदस्य को बाहर निकाल दिया जाए, अनाथालय-पागलखाने में भरती करा दिया जाए। इसके लिए मेरा मन कभी भी तैयार नहीं है। दूसरी जो भी सलाह आपको देनी हो आप दें, किंतु उसे अनाथालय में भेजने के लिए मेरा मन तैयार नहीं है और पागलखाने में भेजना भी उचित नहीं

है, क्योंकि पागलखाने में पागलों को भेजा जाता है, जबकि वह पागल नहीं है। सुरेश इस घर का मालिक है, उस दृष्टि से मैं बात नहीं कर रही हूँ। मूल बात है कि मैंने माँजी को जबान दी है अत: मैं अपने कर्तव्य का पालन कर रही हूँ।

ननद कहती है, देखो भाभी! जिद मत करो। सुनंदा ने कहा, मेरी जिद नहीं है। इसके बावजूद यदि नीति पर चलना जिद माना जाए तो आप जिद मान लीजिए, मुझे इसमें कोई एतराज नहीं है।

ननद सोचने लगी कि ऐसा क्या उपाय करूँ जिससे भाभी बात मान ले। दोनों के बीच आगे जो चर्चा हुई, उसे समय के साथ सुन पाएंगे। वह समय के साथ ज्ञात हो पाएगा।

नैतिकता की राह पर चलना कठिन हो सकता है, किंतु सुखद होता है। संतोष देने वाला होता है। समाधि देने वाला होता है। तृप्ति देने वाला होता है। अनैतिकता से भले ही आर्थिक या दूसरे-दूसरे लाभ हो जाएं, किंतु मन को जो संतोष मिलना चाहिए, जो तृप्ति मिलनी चाहिए वह नहीं मिलेगी।

कोई विचार कर सकता है कि सुरेश का अपना पुण्य-पाप है, उसको उसके भरोसे छोड़ दिया जाए, किंतु बात ऐसी नहीं है। कर्तव्य भी बहुत बड़ी बात होती है। सुनंदा अपनी सास को जबान दी थी कि आप विचार नहीं करें, आप निश्चिंत हो जाएं, मैं सुरेश का पूरा ध्यान रखूंगी। अपनी दी गई जबान बदलने के लिए सुनंदा तैयार नहीं है। हमें भी विचार करने की आवश्यकता है कि हम किसी के साथ विश्वासघात तो नहीं करते हैं। हम बहाने तो नहीं बना लेते हैं। हमें नैतिकता का पक्ष सामने रखना चाहिए और नीति के धरातल पर अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए।

तपस्या का दौर चल रहा है। श्री गगन मुनि जी म.सा. की 24 की, महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की 21 की व सरिता जी मुणोत की 65 की तपस्या है। अरुणा जी रंगवाला की कल 31 की तपस्या थी, आज पारणे की संभावना बताई जा रही है। प्रतापगढ़ के प्रकाशचंद जी चिप्पड़ की पुत्रवधू और प्रांजल जी चिप्पड़ की धर्म सहायिका अनिता जी चिप्पड़ आज 34 की तपस्या का पच्चक्खाण करने के भाव रख रही हैं। और भी कई भाई-बहनों में तपस्याएं चल रही हैं। कई लोग अलग से पच्चक्खाण लेते हैं। अपनी-अपनी भावना

प्रधान है। इनसे प्रेरणा लें और विचार करें कि हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए! अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होंगे तो आगे बढ़ेंगे। फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

02 सितंबर, 2023

साधुमार्गी पब्लिकेशन

11

सरस जीवन की पहचान

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धम्म सद्धा चालीसा के अंत में बताया है–

'दुख जाएगा हार, मोह जाएगा हार'

दुख की पैदाइश कहाँ से होती है? मनुष्य को मन से दुख पैदा होता है, किंतु बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिंद्रिय के पास मन नहीं है फिर भी वे दुखी होते हैं। उन्हें भी दुख होता है। अत: दुख का कारण मन नहीं, अपितु पुद्गलों के प्रति आसक्ति का भाव है। दुख का कारण मोह को माना गया है, राग भाव को माना गया है। जो चीज अपनी नहीं है, जो चीज अपने अधिकार में नहीं है, उसको प्राप्त करने की कोशिश दुख पैदा करता है।

कान, आँख, नाक, जिह्वा और स्पर्शेंद्रिय अपने-अपने विषयों को ग्रहण करती है। न केवल ग्रहण करती है, अपितु उन पर आसक्त भी हो जाती है। इतनी आसक्त हो जाती है कि वह चीज नहीं मिले तो मन में दुख पैदा हो जाता है। आर्तध्यान की स्थिति आ जाती है। यह बहुत स्पष्ट है कि पुद्गलों से प्रीत, धर्म नहीं है। धर्म, आत्मा का स्वभाव है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में धर्म मिलेगा। अहिंसा आदि की आराधना से धर्म का भाव विकसित होगा। पुद्गलों से लगाव रहने पर धर्म नहीं बढ़ेगा। मधुर गान के प्रति आकर्षण भी दुख देने वाला हो जाता है। मृग तेज भागता है। थोड़ी ही देर में कहाँ से कहाँ चला जाता

है, पता ही नहीं चलता, किंतु मधुर गीतों के वशीभूत होकर वह फँस जाता है। शिकारी उसको पकड़ लेता है।

एक राजकुमारी का संकल्प था कि किसी रसज्ञ से ही शादी करूंगी। जिसका जीवन रसमय होगा, उसी से शादी करूंगी। बहुत-से राजकुमार आए, बहुत-से श्रेष्ठि पुत्र आए। उन सबकी परीक्षा ली गई, किंतु वे परीक्षा में खरे नहीं उतर पाए।

कोई आपसे पूछ ले कि आपके जीवन में रस है क्या तो क्या बोलेंगे? आप सरस जीवन जी रहे हैं या नीरस? सरस का मतलब है रस सहित।

लोग रस को चखते जरूर हैं, किंतु जानते नहीं कि रस क्या होता है। रस किसको समझा जा रहा है?

जिसमें ईश्वरीय गुण उतर जाता है वह रस वाला होता है। वह रसमय जीवन जीने वाला होता है। उसके जीवन में रस ही रस मिलेगा। उसके जीवन में रस परिव्याप्त होगा। इससे विपरीत जिसकी प्रीत पुद्गलों के साथ है, उसको पुद्गलों में रस मिलता है, किंतु उसका जीवन नीरस मिलेगा। उसका जीवन सूना-सूना मिलेगा। खाली-खाली होगा।

राजकुमारी की उम्र बढ़ती जा रही थी। सम्राट चिंतित हो रहे थे कि इसने क्या जिद पकड़ ली और इसको कोई रसज्ञ मिल ही नहीं रहा है। एक बार राजकुमारी रथारूढ़ हो भ्रमण के लिए निकली, साथ में सहेलियाँ थीं। भ्रमण करते हुए राजकुमारी एक जगह से निकली तो उसके कानों में आवाज आई।

राजकुमारी को जिधर से आवाज आई थी, उधर देखा तो आचार्य अभयदेव सूरि स्वाध्याय में लीन थे। वे लयबद्ध स्वाध्याय कर रहे थे। उनकी वाणी इतनी मधुर थी जैसे शांत सुधारस निर्झर हो रहा था। ध्वनि इतनी आकर्षक थी कि राजकुमारी का चित्त उसमें लीन हो गया। राजकुमारी रथ को रुकवाकर नीचे उतरी और उपाश्रय में पहुँचकर आचार्य अभयदेव सूरि जी से कहती है, नाथ! आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई, मुझे आप स्वीकार करें। मैं आपके साथ शादी करना चाहती हूँ।

आचार्य अभयदेव सूरि ने उसको तत्त्वबोध कराया कि भद्रे! हम मुनि हैं, हम साधु हैं। शादी-विवाह की बात तो दूर, उस पचड़े में भी नहीं पड़ते।

हमने आरंभ-परिग्रह का त्याग किया है। हम अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की उपासना करते हैं। एक निश्चित समय के बाद हमारे स्थान पर नारी ठहर भी नहीं सकती। आचार्य अभयदेव सूरि ने उसको साधु जीवन का स्वरूप बताया।

राजकुमारी ने कहा- नाथ! आप जो भी कहें किंतु मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है और मेरी प्रतिज्ञा आज पूर्ण हो गई। अब आपका जो उपदेश होगा, कथन होगा उसको मैं स्वीकार करूंगी। आचार्य अभयदेव सूरि की वाणी सुनकर, उनका उपदेश सुनकर राजकुमारी के मन में वैराग्य पैदा हो गया। वह राग से विराग की ओर मुड़ गई। वह वैरागी बन गई।

आचार्य अभयदेव सूरि का उपदेश सुनने के बाद घर लौटकर उसने राजा-रानी से निवेदन किया कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। सम्राट बड़े खुश हुए कि धन्य हो बेटी! तुमने कठोर प्रतिज्ञा स्वीकार की और तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। फिर राजकुमारी ने सारा वाकया सुनाते हुए कहा कि अब मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है।

राजा ने समझाया, बेटी! तुमने साधु जीवन को क्या जाना, क्या समझा। साधु जीवन कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने के समान है। जैसे काँटे बिखरे हुए मार्ग पर चलना आसान नहीं होता, वैसे ही साधुता के मार्ग पर चलना आसान नहीं है।

मुझे लगी प्रभु संग प्रीत, दुनिया क्या जाने,
क्या जाने भई क्या जाने, मैं जानूँ या वो जाने...

प्रभु से प्रीत लगना आसान काम नहीं है। प्रीत लगने का मतलब, पागल हो जाना है। बिना पगलाये प्रीत नहीं लगेगी। प्रीत लगने के बाद न खाना सुहाता है, न पीना। प्रीत लगने के बाद व्यक्ति की चर्या बदल जाती है। उसकी रंगत बदल जाती है। उसे स्वयं पता नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है। सच्ची प्रीत को समझना और जानना है तो मृगावती से जाना जा सकता है। मीरा के जीवन से वह बात जानी जा सकती है। स्वयं इस राजकुमारी से जानी जा सकती है। हमारी प्रीत राग-रंगीली प्रीत है। चाहे वह किसी मनुष्य से हो, चाहे किसी पदार्थ से। हमारी प्रीत आत्मा से नहीं मन से है। आत्मा से प्रीत लगने पर रंगत

अलग ही होगी। आपने सुना होगा–

'कामदेव ना डिगता बंदा, कलुष देव का छूटा फंदा'

कामदेव धर्म की प्रीत में मग्न था। धर्म के प्रेम से अनुरक्त व्यक्ति में धर्म प्राण बन जाता है। वही धर्म, आधार बन जाता है। वही धर्म मुक्ति की ओर आगे बढ़ाने वाला होता है। मृगावती, भगवान महावीर की प्रीत में मुग्ध हो गई। उनमें वह बावली हो गई। वैसे बावली शब्द उचित नहीं है, किंतु प्रीत का स्वरूप ऐसा ही होता है।

राजकुमारी ने अपने पिता से कहा, पिताश्री! मैंने जीवन के रस की पहचान कर ली। खाने-पीने में कोई रस नहीं है। जीभ पर पदार्थ जाने पर थोड़ी देर के लिए स्वाद आ जाता है। वह स्वाद, वह रस निरंतर नहीं रह सकता।

आगमों में वर्णन आता है कि आदिपुरुषों से पूछा जाता है कि राजकुमार! आपका मुँह क्या खाना पसंद करता है। वह जो चीज खाना चाहता है वह उपलब्ध कराई जाती थी।

भारत में अभी जी-20 का बोलबाला चल रहा है। सैकड़ों बैठकें हो चुकी हैं। और भी होने वाली हैं। भिन्न-भिन्न देशों के राजनयिक उपस्थित होंगे। सबके लिए एक ही भोजन होगा या भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा?

(श्रोतागण बोले- भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा)

कुछ भोजन जनरल हो सकता है बाकी सबकी अपनी-अपनी पसंद की चीजें होंगी। कितनी देर तक व्यक्ति उन चीजों को खाएगा? कितने पीस खा लेगा? मान लो बादाम की कतली आ गई तो कितने पीस खा लेगा?

आपकी आवाज नहीं आ रही है। कितने पीस खा लेगा?

(श्रोतागण बोले- चार-पाँच पीस खा लेगा)

गंगाशहर-भीनासर के पींचा जी, तीन धामे कतली खा लेते थे। दो-तीन पीस नहीं, तीन धामा कतली आराम से खा लेते थे। ऊपर से राजभोग आ गए तो तीन धामे राजभोग खा लेते। यहाँ कौन मिलेगा ऐसा धुरंधर। बालेसर के छगनलाल जी मोदी पौने तीन सेर घी पी गए थे। पौने तीन सेर यानी लगभग ढाई किलो। वैसा धुरंधर है कोई यहाँ पर? पौने तीन सेर घी पीकर वे सोते नहीं थे। उसको पचाते थे। पचाने के लिए सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते। नहीं पचाने पर

दस्त होने लगेगी और हॉस्पीटल में भरती होना पड़ेगा। ऐसे-ऐसे शूरवीर यहाँ हो चुके हैं।

मेरे कहने का आशय यह है कि कितनी भी प्रिय चीज क्यों न हो, एक सीमा तक ही खाई जा सकती है। उसके बाद दो पीस भी ज्यादा लेने पर वमन हो जाएगा। पुद्गल से प्रीत भी एक समय तक ही रह पाती है, किंतु परमात्मा से प्रीत चलती ही रहती है। उसमें विराम नहीं लगता है। वह प्रीत ऐसी होती है कि 'वो जाने या मैं जानूँ, दुनिया क्या जाने।' दुनिया कहती है कि पागल हो गया है। इसमें समझ ही नहीं है जबकि उसको जो समझ है, वह हमारे में नहीं है। हमारी समझ गणित के आधार पर चलती है, किंतु उनकी समझ का कोई माप-तौल नहीं है, वह अमाप है। उसकी कोई सीमा नहीं है। वह प्रीत, असीम है। वह प्रीत परमात्मा बनाने वाली होगी जबकि पुद्गल की प्रीत संसार में फँसाने वाली होती है। आप किसमें राजी हैं? फँसने में या तिरने में?

(श्रोतागण बोले- हम तिरने में राजी हैं)

जल्दबाजी मत करो। ऐसी बातें मैं बहुत बार सुन चुका हूँ। ये केवल मुँह की बातें हैं, जीवन की नहीं। ये सच्चाई नहीं है। एक कहानी में एक होता है शंख और एक ढपोरशंख। शंख देता है जबकि ढपोरशंख कहता है, लाख के दस लाख। करोड़ के दस करोड़ और देता कुछ भी नहीं।

हमारी आवाज कैसी है? हमारा उत्तर कैसा है?

हम तिरना चाहते हैं। तालाब में तैरना चाहते हैं या कुएं में? नदी में या समुद्र में? हमें तैरना आता भी है या नहीं? हाथ-पाँव चलाना भी आता है या नहीं? नदी या तालाब में तैरना भी हमारे लिए कठिन हो रहा है। वहाँ भी तकनीक होनी चाहिए, तरीका होना चाहिए। तिरने का तरीका होने पर ही आदमी तिर पाता है और संसार-सागर से तिरने के लिए भुजाओं में भारी बल होने की आवश्यकता नहीं रहेगी। किंतु मनोबल स्ट्रोंग होना जरूरी होगा। यदि मन फिसल रहा है तो संसार-सागर से तिर पाना इतना आसान नहीं है। आप तिरना चाहते हो पर आपके पास उसके लिए उपाय क्या है? जो लोग बोल रहे हैं कि हम तिरना चाहते हैं, उनके पास तिरने की क्या तकनीक है, क्या उपाय है? जिसके पास सुबह-शाम खाने का जुगाड़ नहीं हो वह सोचे कि मैं पूरे

नीमच को जिमाना चाहता हूँ, तो जिमा पाएगा क्या?

एक श्रावक बड़ा ऊँचा ख्वाब देखता था। लगभग तीस साल पहले की बात है। उसने कहा, म.सा.! एक करोड़ की लॉटरी निकल जाएगी तो मैं पाँच लाख का समता भवन बनाऊँगा। उस जमाने में पाँच लाख बहुत होते थे। वह ख्वाब बड़े ऊँचे देखता था। इधर-उधर से पैसा इकट्ठा करता और लॉटरी में लगा देता। लोगों से कहता कि लॉटरी लगते ही आपका पैसा वापस कर दूँगा। लॉटरी भी हर किसी की नहीं लगती। जो भाग्यशाली होता है उसकी लॉटरी लग सकती है। हर किसी की लॉटरी लग जाए तो बात ही क्या है।

व्यक्ति का पुण्य प्रबल होता है तभी लॉटरी उठती है। उसने खूब पैसे खर्च किए। मैंने कहा, ऐसा काम क्यों करते हो। उसने कहा, म.सा.! मुझे एक करोड़ की लॉटरी उठानी है। ऐसे ख्वाब देखने वाले बहुत लोग हैं। ऐसे ख्वाब देखने से काम नहीं होता है, धरातल होना जरूरी है। हमारा धरातल क्या है? हमारे पास तिरने के लिए शक्ति क्या है? तिरने के लिए हमारी तैयारी क्या है?

खैर, राजकुमारी की तिरने की कोई तैयारी नहीं थी। वह जानती भी नहीं थी कि साधु जीवन क्या होता है। किंतु आचार्य अभयदेव सूरि का एक उपदेश सुनकर वह रस में लीन हो गई। ऐसा माना जाता है कि आचार्य अभयदेव सूरि की आवाज इतनी रसीली थी कि जब वे स्वाध्याय करते थे तो रास्ते में जाने वाले लोग रुक जाते थे। खड़े हो जाते थे।

मैंने ऐसा सुना है कि आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. की वाणी में इतना माधुर्य था कि मानो अमृत टपक रहा हो। अमिय वर्षा हो रही हो। यह भी बहुत कठिन होता है। इतना माधुर्य हर किसी को प्राप्त नहीं हो पाता है। पुण्यवानी का योग होता है तो जीवन में माधुर्य मिलता है।

राजकुमारी ने निश्चय कर लिया कि मुझे साधु बनना है। सम्राट समझाने में विफल हो गया तो राजकुमारी की भावनानुसार आचार्य अभयदेव सूरि के नेश्राय में, सान्निध्य में उसको दीक्षित किया गया। राजकुमारी दीक्षित होकर कठोर साधना को अपनाती है। कठोर साधना उसके जीवन का अंग बन गया। बहुत से लोग साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं। दीक्षा लेते समय बड़ी हिम्मत होती है, साहस होता है, जोश होता है, किंतु साधु जीवन में आने के

बाद उस जीवन की आराधना हो नहीं पाती है। सिंह की तरह दीक्षा लेकर सियार की तरह पालने लगते हैं। दम, खम और रस खत्म हो जाता है। जैसे पानी में लाश बहती है वैसे ही साधु जीवन में बहते चले जाते हैं। साधु जीवन नहीं रह जाता है। पोशाक साधु की रह गई और उसी पोशाक में जी रहा है। ऐसे साधुओं के लिए भगवान उपदेश देते हैं–

'जाए सद्धाए निक्खंतो, तमेव अणुपालिज्जा'

जिस उमंग से, जिस उल्लास से साधु जीवन को स्वीकार किया है उसी उमंग–उल्लास के साथ संयम का पालन करें। साधु जीवन ही नहीं, कोई भी व्रत–नियम स्वीकार करने के बाद उसमें कच्चावट नहीं आनी चाहिए। लिए गए नियम–पच्चक्खाण, मर्यादाओं का दृढ़ता से पालन होना चाहिए। तन जाए तो जाए, प्रतिज्ञा अटूट रहे। अटल रहे।

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।।

यह आवाज कहाँ से आ रही है? गले से आ रही है, तालू से आ रही है या कंठ से आ रही है? नाभि से आवाज उठनी चाहिए। नाभि से आवाज उठने का मतलब है कि दृढ़ता से बोल रहे हैं। हमारी दृढ़ता भी वैसी ही हो। 'तन जाए तो जाए, किंतु वचन नहीं जाना चाहिए।' कोई कारण नहीं है, कोई बहाना नहीं है। जो त्याग–प्रतिज्ञा स्वीकार की है वह करूंगा। भीतर की जैसी आवाज है वैसा ही दमखम होना चाहिए। तब तो लगेगा कि तिरने की तैयारी है, नहीं तो बिना दमखम के तिरने की तैयारी कैसे हो पाएगी।

सुनंदा का कथन भी हमारे सामने चल रहा है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
नई बात भी नौ दिन चलती, खींचो तो तेरह दिन चलती,
फिर जाते हैं भूल, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...
बात खिंची हो यदि आपस में, बने बिगड़े पड़ गए पस में,
करो न तस विचार, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...
बीच–बचाव मैं कर दूँगी, जो भी होगा मैं समझूँगी,
जान लूं तेरा रुख, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

शर्मिला, सुनंदा को समझाते हुए कहती है, भाभी! घर में क्लेश ठीक

नहीं है। घर में खींचतान हो जाती है तो बात संभालनी पड़ती है। अपने से बात नहीं संभाली जाती है तो कभी-कभी इगो टकराने लगता है। वह कहता है कि मेरा कहना मानो। अत: ये विचार छोड़ दो कि लोग क्या कहेंगे। यदि विजय, सुरेश को अनाथालय या पागलखाने में भरती कराना चाहता है तो कराने दो। विजय जाने और उसका काम जाने। नई बात नौ दिन खिंचती है। नौ दिन तक लोग बातें करेंगे। नौ दिन के बाद लोग भूल जाते हैं। ज्यादा-से-ज्यादा तेरह दिन चलेगी। कहावत है कि 'नई बात नौ दिन, खिंचे ताणे तेरह दिन।' उसके बाद किसको फुरसत है कि रोज-रोज आपकी बात याद रखे। तेरह दिन बाद लोगों को नई बात मिल जाती है। अगले तेरह दिन बाद फिर कोई नई बात मिल जाती है। नए के प्रति आकर्षण होता है। आगे उसने कहा कि राय देना मेरा फर्ज है, तुम्हें बात जमती है तो घर का क्लेश शांत हो जाएगा। यदि आपस में बात नहीं बन रही हो तो मैं बीच-बचाव कर दूँगी। मैं तुम्हारे रुख को जानना चाहती हूँ। तुम्हारा रुख समझ में आ जाए तो मैं आगे बात करूँ। ऐसा कहते हुए वह उठने को तैयार हो रही थी कि सुनंदा ने कहा, रुकिए। सुनंदा अपनी बात बताना चाहेगी।

बात जमना अच्छी बात है, किंतु बात ऐसी जमनी चाहिए जैसे दूध में शक्कर घुल जाए। दूध में पानी मिलने जैसी बात नहीं जमनी चाहिए। दूध में पानी मिलने पर उसकी क्वालिटी हलकी हो जाएगी और शक्कर मिलने पर उसकी गुणवत्ता बढ़ जाएगी। बीस लीटर दूध एक तरफ पड़ा है और एक लीटर दूध एक तरफ। एक लीटर दूध में मिश्री, केसर और इलायची मिली हुई है तो आप कौन-सा दूध पसंद करेंगे? बीस लीटर या एक लीटर?

(श्रोतागण बोले- एक लीटर पसंद करेंगे)

वैसे ही बात जमने का कार्य केवल औपचारिक नहीं होना चाहिए। ऐसा रस मिल जाना चाहिए, ऐसा मेल-मिलाप हो जाना चाहिए जैसे कि दूध में से कोई शक्कर निकालना चाहे तो भी नहीं निकले। दूध में से पानी निकालना हो तो दूध को चूल्हे पर चढ़ाने पर पानी टिकेगा नहीं।

दूध के साथ पानी कब तक रहता है? जब तक दूध आग पर नहीं चढ़े। कठिनाइयों का क्षण आएगा तो पानी भागेगा। कठिनाई में पानी, दूध का

साथ नहीं निभाएगा। चूल्हे पर चढ़ने पर पानी भाप बनकर भाग जाएगा। दूध में मिले शक्कर और मिश्री को जलना मंजूर है, किंतु उनमें अलगाव नहीं हो सकता। ऐसा मेल-मिलाप होना चाहिए। हाँ जी, हाँ जी वाली बात नहीं रहनी चाहिए।

शर्मिला का लक्ष्य था कि कैसे भी करके बात जम जानी चाहिए। उसका ध्येय था कि विजय जो चाह रहा है वह हो जाए। या तो सुरेश को अनाथाश्रम भेज दिया जाए या पागलखाने में। इस लय पर, इसी तर्ज पर वह सुनंदा से बात कर रही थी।

सुनंदा की कोई जिद नहीं है, बस नैतिकता की बात है कि सुरेश को अनाथालय या पागलखाने क्यों भेजा जाए। वह उसके पीछे का तर्क जानना चाहती है। उचित कारण जानना चाहती है।

कारण विजय के पास नहीं है, बस नहीं रखना है इसलिए भेजना है। वही तकरार आपस में बनी हुई है। विजय, सुरेश को घर पर रखना नहीं चाहता है और सुनंदा उसको घर से निकालने के लिए तैयार नहीं है। विजय के बहन-बहनोई सुनंदा को समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अब आगे किस रूप में बात बढ़ती है उसे समय के साथ सुन पाएंगे।

तपस्या का दौर चल रहा है। श्री गगन मुनि जी म.सा. की 25, महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की 22 की तपस्या है। और भी कई भाई-बहनों की तपस्या चल रही है। अनुरागश्री जी म.सा. कहने लगीं कि म.सा. अदिति का मासखमण का मन हो रहा है, किंतु तबीयत अनुकूल नहीं है। यह तो वही विचार करेगी, वही सोचेगी। आज इनकी 21 की तपस्या है। इनका छोटा-सा बेटा कहता है- मम्मी! आप हंड्रेड की तपस्या करो और घरवालों ने भी बोल दिया कि आप मासखमण करो या सौ करो हमारी तरफ से कोई मना नहीं है। अपने मन की बात है।

'मन के हारे हार है और मन के जीते जीत'

मन मजबूत होगा तो शरीर को खींच लेगा। मन कमजोर होने पर शरीर को खींचना कठिन हो जाता है। आज 21 है। 21 से 25, 25 के बाद सीधी 30 की छलांग। एक छलांग लगाने पर मासखमण। कठिनाई की कोई बात ही

नहीं है। कभी भी मासखमण करना होगा तो ये 21 दिन तो वापस लाने ही पड़ेंगे। यदि अभी मासखमण नहीं किया और आगे कभी मासखमण करना चाहेंगे तो ये 21 दिन घाटी बनकर खड़े रहेंगे। फिर एक से शुरू करना पड़ेगा, किंतु अब तो नौ ही घट रहे हैं। नौ दिनों में तो मासखमण हो जाएगा।

चातुर्मास में नौ दिन की तपस्या करने वाले कौन-कौन हैं, खड़े हो जाएं। अभी तो एक संवत्सरी और आ रही है। तपस्या करने में हमारी तरफ से कोई रुकावट नहीं है। खड़े हो जाएं, कौन-कौन तैयार हैं?

एक भाई खड़ा हुआ है। कोई तो शूरवीर है इस सभा में। 'जो बोले सो अभय।' इतनी बड़ी सभा में दो लोगों का खड़ा होना शोभा देता है क्या? ये भाई कहाँ के हैं?

(श्रोतागण बोले- एक मंदसौर और एक मंगलवाड़ के हैं)

केसूंदा वाले भी खड़े हो गए। यह चौमासा नीमच का है या केसूंदा का? जुबिन जी ने पहले मासखमण किया और फिर नौ के लिए खड़े हो गए हैं। बहनें भी खड़ी हो रही हैं। और कोई हो तो देख लो। फिर मैं भी बोलने वाला नहीं हूँ। लोग खड़े हो तो रहे हैं। शूरवीरों की कमी नहीं है। आदित्य मुनि जी म.सा. यहाँ नहीं हैं, नहीं तो वे और लोगों को खड़ा कर लेते। क्या बोल कर खड़ा कर लेते, क्या गाकर खड़ा कर लेते?

(सतियां जी म.सा. गाने लगीं- ऐसा अवसर मिला है, मिलेगा कहाँ)

देख लो, और किसी को भी हिम्मत करनी हो तो मौका है। लोग खड़े हो तो रहे हैं। एक बार गाड़ी चालू हो गई, अब यह रुकने वाली नहीं है। चाहे बाहर के हों या यहाँ के, कोई भी खड़ा हो सकता है, कोई दिक्कत नहीं है। कितने जने खड़े हो गए?

(श्रोतागण बोले- बारह जने खड़े हो गए)

बाहर का आँकड़ा सही नहीं है। भीतर का आँकड़ा होना चाहिए। अब गाड़ी रुकनी मुश्किल है। अभी गाड़ी ने स्पीड ले ली है।

(लोग खड़े होने लगे)

मैंने कहा न! अब गाड़ी रुकनी मुश्किल है। अब गाड़ी रुकने वाली नहीं है। अब ब्रेक लगना मुश्किल है। सरिता जी मुणोत की आज 66 की

तपस्या है और वे पारणा के बाद नौ के लिए और बोल रही हैं। मासखमण करनेवालों को भी धन्य हो और नौ की तपस्या करनेवालों को भी धन्य हो। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

(9 की तपस्या के लिए 31 भाई-बहन खड़े हुए)

03 सितंबर, 2023

12

अब न खाना हमको धक्का

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

'बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं' का अर्थ है कि मैं अपने मन मंदिर में दूसरे को स्थान नहीं देता। अपने मन मंदिर में दूसरी बात को, दूसरे विषय को नहीं लाता हूँ। क्या विषय लाने का रह गया?

'कथित देव अरिहंत से, शुद्ध दयामय धर्म'

शुद्ध दयामय धर्म ही मेरे मन मंदिर में वास करनेवाला होगा। उससे भिन्न क्या है? शुद्ध दयामय धर्म से विपरीत क्या है?

शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गल के धर्म हैं। पुद्गल में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श मिलेगा। शुद्ध चैतन्य आत्मा में न वर्ण मिलेगा, न गंध। न रस मिलेगा और न स्पर्श। पुद्गल के धर्म जिसके मन में बसते हैं वह धर्म से बाहर हो जाता है।

प्रश्न है कि क्या पुद्गल के बिना काम चलेगा?

इसका उत्तर होगा कि जब तक व्यक्ति संसार में है, शरीर को धारण करके चल रहा है, तब तक पुद्गल के बिना काम नहीं चलेगा। फिर प्रश्न उठेगा कि पुद्गल के बिना काम नहीं चलेगा तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के प्रति मन कैसे नहीं जाएगा?

यहाँ पर विचार करना पड़ेगा। यहाँ पर समाधान लेना पड़ेगा। हमारा काम बहुतों से पड़ता होगा और हमें बहुतों से काम लेना होता है। बहुतों से

काम लेने का अर्थ यह नहीं है कि हर किसी के साथ जुड़ जाएं। पुद्गल का संबंध हमारे साथ जुड़ा हुआ है। अनादिकाल से जुड़ा हुआ है। अब ऐसी साधना करनी है कि पुद्गल के साथ संबंध विच्छेद हो जाए। पुद्गलों से अपने आपको अलग कर लें। जब तक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हमें प्रभावित करते रहेंगे, तब तक हम उनके निकट जाने वाले होंगे। समीप जाने वाले होंगे। उनके साथ अनुरक्ति के भाव जुड़ेंगे। लगाव बढ़ेगा। ऐसे में जो साधना पुद्गल से संबंध कट करनेवाली है, वह सफल नहीं हो पाएगी।

हमने बहुत बार साधना की है। अनेक बार साधु जीवन स्वीकार किया है। अनेक बार श्रावक बन गए हैं, किंतु जो कार्य सिद्ध होना चाहिए वह सिद्ध नहीं हो पाया।

'मधुर स्वर में मृग फँसा, रूप पतंगा जान'

मृग मधुर शब्दों में फँस जाता है, उलझ जाता है। वह मधुर स्वर सुनने में तन्मय हो जाता है और शिकारी उसको पकड़ लेता है।

'रूप पतंगा जान।' आपने पतंगे को देखा होगा। पतंगा, रोशनी पर झंपापात करता है। वहाँ उसको ताप लगता है, वह मूर्च्छित होकर गिर जाता है। मूर्च्छा हटने के बाद वापस झंपापात करता है। फिर ताप लगता है तो फिर गिर जाता है, बेहोश हो जाता है। इस प्रकार झंपापात करते हुए वह अपने प्राणों को खो बैठता है। यह बात वैराग्य प्रकट करने के लिए ज्ञानीजनों ने हमें बताई है कि शब्द में, रूप में, गंध में, रस में, स्पर्श में आसक्त मत बनो। उसको पाने के लिए सारी जिंदगी लगा देंगे तो भी कुछ हाथ आने वाला नहीं है। पिछले समय में हमने अनंतानंत बार जन्म लिए हैं, क्या सार निकाला? मनुष्य भी बहुत बार बने। ऐसा नहीं कि पहले कभी मनुष्य नहीं बने। अनंतानंत बार मनुष्य जीवन प्राप्त कर चुके हैं, किंतु मिला क्या? पाया क्या?

जिस अज्ञान में जन्म लिया उसी अज्ञान में मर गए। इसलिए जन्म-मरण बना हुआ है। यदि यही दशा चलती रहेगी तो जन्म-मरण थमने वाला नहीं है।

ऋषभदेव भगवान को हुए कितने वर्ष हो गए?

ऋषभदेव भगवान को हुए असंख्येय वर्ष हो गए। वे भी हमारे साथ रहे

थे और हम भी उनके साथ रहे थे। उन्होंने स्वयं को जगा लिया और कार्य सिद्ध कर लिया। हम भी जागेंगे तो कार्य सिद्धि होगी। यह बहुत स्पष्ट है कि जब तक हम परायेपन में जीते रहेंगे, जब तक पुद्गलों को महत्त्व देते रहेंगे, तब तक सफलता नहीं मिल पाएगी। हमने पुद्गलों को बहुत महत्त्व दिया है। हमने उनका बहुत ध्यान रखा है। हमने उनका जितना ध्यान रखा उतना ही सौतेला व्यवहार हमारी आत्मा के साथ हुआ है, जबकि यह शरीर आत्मा के आधार पर है। यदि शरीर से आत्मा हट जाए, निकल जाए तो उसका कोई काम नहीं है, बल्कि उसे जलाने के लिए ऊपर से और खर्चा करना पड़ेगा, फिर भी लोग शरीर में मुग्ध बने हुए हैं। पदार्थों में मुग्ध बने हुए हैं।

कान अच्छी बातें सुनना चाहते हैं। मधुर स्वर सुनना चाहते हैं। मधुर स्वर सुनना बुरा नहीं है, किंतु उसमें आसक्त हो जाना, उसी में पागल हो जाना, अपने आपको भूल जाना बुरी बात है। पतंगे की तरह रूप में मुग्ध हो जाना, बार-बार झंपापात करना और मर जाना। ऐसे बहुत सारे आख्यान मिलते हैं जो रूप में आसक्ति का बोध कराते हैं।

एक सेठ की पत्नी बड़ी सुंदर थी। सेठ पत्नी को देखता रहता। उस पर मुग्ध बना रहता था। मन-ही-मन बड़ा खुश होता कि मेरी पत्नी इतनी सुंदर है। पत्नी को देखते हुए उसकी आँखें थकती नहीं थीं। रूप-सौंदर्य श्रेणिक का भी कम नहीं था, सुबाहु कुमार का भी कम नहीं था। गौतम स्वामी के मन में एक बात आई कि अन्य लोग इनके सौंदर्य को देखते हैं, किंतु मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि बहुत-से साधुगण भी इनके रूप-सौंदर्य से आकर्षित हैं। आकर्षित का मतलब है, वे सोचते हैं कि हम उनके साथ दो बात करें, उनके साथ दो मिनट बैठें। साधुओं के मन में भी ऐसा भाव आने का कारण क्या है?

जो भी कारण हो, मैं उस बात पर नहीं जा रहा हूँ, किंतु ऐसा सौंदर्य, ऐसा सुंदर रूप था, जिससे मुनि भी आकर्षित हो रहे थे। इधर सेठ अपनी पत्नी के रूप पर मुग्ध हो रहा है। श्रेणिक कुमार के सौंदर्य के प्रति साधु आकर्षित हुए, किंतु बेभान नहीं हुए। उसकी गुणवत्ता के कारण वे उसके प्रति आकर्षित हो रहे थे जबकि सेठ का अपनी पत्नी पर मुग्ध होना मोह का प्रकर्ष भाव था। उन्माद था।

एक सौंदर्य शरीर का होता है और एक सौंदर्य जीवन का। जीवन की सुंदरता सुंदर कार्यों से पैदा होती है और शरीर की सुंदरता नामकर्म से पैदा होती है।

संयोग ऐसा बना कि सेठ की पत्नी बीमार हो गई। उसे एक फोड़ा हो गया। उसे भयंकर दर्द होने लगा। वेदना होने लगी। वह छटपटाने लगी। डॉक्टरों को दिखाया गया, किंतु कोई इलाज नहीं लगा। पत्नी की वेदना महसूस कर सेठ के मन में भी वेदना होने लगी। सेठ आर्तध्यान में चला गया। उसी समय उसका आयुष्य बंध हुआ और वह मर गया। वह मरकर उसी फोड़े में कीड़े के रूप में जन्म ले लेता है। क्या हुआ, किसके कारण हुआ? सोच लेना। हमें मनुष्य जन्म मिला है। बहुत मूल्यवान जीवन मिला है और हम इसका आगे परिणाम क्या चाहते हैं।

देवलोक के कुछ देव वहाँ के रत्नों में, हीरों में, माणक और मोतियों में मुग्ध हो जाते हैं और देखते हैं कि आहा! हमारे पास इतना वैभव है। इतना धन है, इतना सुंदर रूप है। वैसे समय में यदि उनका आयुष्य बंध हो जाए तो वे मरकर पृथ्वीकाय में जन्म ले लेते हैं।

यह किसी एक की बात नहीं है। हम सबकी यही कहानी है। हम भी देवलोक में गए। देवलोक से पृथ्वीकाय में आए। पृथ्वीकाय से मनुष्य जन्म प्राप्त किया। मनुष्य जन्म से पशु बने। पशु बनकर वनस्पतिकाय में चले गए। वनस्पतिकाय से तिर्यंच पंचेन्द्रिय बन नरक में गए। वहाँ की वेदना वेदकर पृथ्वी आदि में गए थोड़े हलके हुए तो मनुष्य भव और देवलोक में गए। देवलोक में मुग्ध होकर वापस जन्म लिया। इस प्रकार जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। जब तक हम नहीं जागेंगे तब तक यह चक्र चलता रहेगा। पुराने संत एक गीत गाया करते थे-

'पुद्गल दे दे धक्का तूने, मुझको खूब रुलाया है'

किसने रुलाया? पुद्गल ने आपको बुलाया या आप पुद्गल की ओर आकर्षित हुए?

(श्रोतागण बोले- हम पुद्गल की ओर आकर्षित हुए)

वीतरागी भी इस संसार में रहते हैं, उनको पुद्गल धक्का नहीं लगाते।

हम खुद पुद्गल के पास जाकर धक्का खाते हैं, किंतु दोष दूसरों को देते हैं।

'पुद्गल दे दे धक्का तूने, मुझको खूब रुलाया है'

पुद्गल बेचारा क्या धक्का लगाएगा। चलते हुए हम पत्थर से ठोकर खा लेते हैं तो पत्थर ठोकर लगाता है या हम ठोकर खाते हैं?

(श्रोतागण बोले- हम खाते हैं)

सावधान होकर नहीं चलेंगे तो ठोकर खाएंगे। ठोकर लगने के बाद पत्थर पर जोर से पाँव पटकते हैं। कभी आपने देखा होगा कि बच्चा जहाँ पर गिरता है वहाँ पर बड़े लोग लात मारते हैं तो बच्चा खुश हो जाता है, जबकि उस जमीन ने, उस जगह ने, उस पत्थर ने उसको नहीं गिराया। लापरवाही ने गिराया। वैसे ही पुद्गल आकर किसी को धक्का नहीं देते। पुद्गल पर आकर्षित हम होते हैं, उस पर झंपापात हम करते हैं, उसको लेने की कोशिश हम करते हैं तो धक्का खाते हैं।

सेठ की दशा आपने सुन ली, किंतु अपनी बात को जान पाए या नहीं? सभी को यह समीक्षा करनी चाहिए कि पुद्गल विशेष पर हमारा कोई ममत्व भाव तो नहीं है! कोई राग भाव तो नहीं है, कोई प्यारा तो नहीं लग रहा है! मन उसमें अटका हुआ तो नहीं है! परायी कथा सुनने का अर्थ यह है कि उससे मन में संवेदना हो जाए। यह कहानी सुनकर हमारे भीतर वैराग्य पैदा होना चाहिए। वैराग्य पैदा होने का मतलब है, पुद्गलों के प्रति विरक्ति पैदा होना। यह भावना होना कि ये मेरे नहीं हैं, मैं इनका नहीं हूँ। लाख कोशिश कर लेंगे तो भी कभी ये अपने नहीं हो पाएंगे। जो मेरा है वह कभी मेरे से अलग नहीं होगा। चाहे उनकी कितनी भी उपेक्षा करेंगे। हमने आत्मगुणों की कितनी उपेक्षा की। क्षमा और धैर्य को भुलाया। मृदुता को गौण किया। क्रोध को जितना धारा, मान को जितना सम्मान दिया उतना आत्मा का मान-सम्मान नहीं किया। फिर भी समता, मृदुता, सहजता, सरलता हमारा हित चाहेंगी। अहिंसा-सत्य हमारा हित करेंगे। इनके प्रति कितनी भी उदासीनता हो फिर भी वे हमारा हित करेंगे जबकि क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय, आसक्ति, अच्छे रूप, अच्छी गंध, अच्छे रस, अच्छे स्पर्श के प्रति आप कितने भी आकर्षित हो जाएं, उनको पाने की कितनी भी कोशिश कर लें, वे कभी आपके नहीं बनेंगे। उन पर

झंपापात करते हुए हम अपनी जिंदगी गँवा देंगे। हमने एक नहीं, अनेक जिंदगियां गँवाईं। आज संसार में बैठे हुए हैं तो उसका कारण भी पुद्गल प्रीत है। यदि हम उसमें लुभाए नहीं होते तो कभी के मोक्ष चले गए होते। वैसे अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।

'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ'

क्या लेनी आगे की सुध? आप कहेंगे कि म.सा. हमने सुना बहुत है, पर हमारे पल्ले पड़ने वाली चीज नहीं है। आप कितना ही सुनाओ, किंतु हमारे पल्ले कुछ पड़ने वाला नहीं है। हमारा मन पुद्गल-घाणी के चारों तरफ घूमता रहेगा, जैसे तेली का बैल घाणी के चारों तरफ घूमता रहता है।

हमारा मन कहाँ घूमता है? हमारा मन पुद्गलों में ही घूमता है या आत्मा की तरफ भी घूमता है? हम आत्मा की दिशा में कितना चले, कितने कदम आत्मा की दिशा में आगे बढ़ाए? आप सोचें कि आपको पाँचवाँ गुण स्थान कब आया?

श्रावक के जीवन की आराधना कर रहे हैं, इसलिए पाँचवाँ गुण स्थान मान रहे हैं। हम साधु बनकर चल रहे हैं तो छठा गुण स्थान मानकर चल रहे हैं। बाकी निश्चय में तो ज्ञानीजनों का विषय है। आपने पाँचवाँ गुण स्थान कब प्राप्त किया? कितने कदम आगे बढ़े? मन कितना तृप्त है? राजी-राजी मन से मरेंगे या हाय-हाय करते मरेंगे?

(श्रोतागण बोले- हाय-हाय करते मरेंगे)

फिर क्यों धर्माराधना कर रहे हैं? क्या इसीलिए धर्माराधना कर रहे हैं कि हाय-हाय करते हुए मरें। यदि ऐसी ही स्थिति है तो धर्माराधना का मतलब क्या हुआ? इसका निचोड़ क्या निकला?

तेली के बैल की तरह हमारा मन भी पुद्गलों के रीति-रिवाजों में चला जा रहा है। वह चाहिए, वह चाहिए, वह चाहिए। कुछ भी हाथ में आना चाहिए, किंतु अभी तक आया कुछ भी नहीं। आगे भी यही दशा रहेगी तो मन खाली का खाली रहेगा। मन कभी भी भरेगा नहीं। जब भी भरेगा आत्मीय सुखों से भरेगा। अहिंसा से मन संतुष्ट होगा। सत्य से मन में संतोष पैदा होगा। ब्रह्मचर्य से मन में आनंद की अनुभूति होगी।

क्या होता है अपरिग्रह? पिंजरे से मुक्त होना अपरिग्रह है। परिग्रह का मतलब है, चारों तरफ से घेराव है। पिंजरे में बंद हैं। पिंजरे से मुक्ति, अपरिग्रह का रूप है। खुले आकाश में उड़ने पर जिस आनंद की अनुभूति होगी, जो आनंद मिलेगा वह परिग्रह में उलझे रहने से कभी मिलने वाला नहीं है।

सुनंदा एक धर्मपरायण जीव है। उसके सामने कठिन कसौटियाँ आ रही हैं, फिर भी वह अपने कर्तव्य पथ पर सुदृढ़ है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
बहन जी अब सुन लें मेरी, मैंने सुन ली बातें तेरी,
तब हो तटस्थ विचार, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...
पार्टी में जाना या आना, कमजोरी यह मैंने माना,
बढ़ी न पर यह बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा, ननद को संबोधित करते हुए कहती है, मैंने आपकी बात सुन ली। अब मेरी बात भी आप सुन लीजिए। उसके बाद तटस्थ भाव से विचार कर जो निर्णय देना हो वह दें। सुनंदा ने कहा कि पार्टी में जाना या न जाना मुद्दे की बात नहीं है और पहले यह बात कभी उठी भी नहीं। ऐसा उन्होंने कभी भी पहले नहीं कहा। आपके कथनानुसार यदि यह भी विषय हो तो यह कोई महत्त्वपूर्ण बिंदु नहीं है। उसने कहा कि अपने अन्तर की बात बताऊँ तो पार्टियों में मेरी रुचि नहीं रहती। वहाँ दिखावा-प्रदर्शन ज्यादा होता है, आत्मीय भाव कम होता है। केवल औपचारिकताओं का निर्वाह होता है। दिल का अटैचमेंट बहुत कम होता है। सभी अपना-अपना प्रदर्शन करने में लगे रहते हैं।

आप भी कभी पार्टी में, शादी-विवाह, फंक्शन में गए होंगे और कहीं नहीं भी गए हों पर अपनी शादी करने तो गए ही थे। शादी में सामायिक की पोशाक पहनकर गए क्या? वहाँ दिखावा ज्यादा होता है। दिखाया जाता है कि हमारे पास कितना धन है, कितनी दौलत है, कितने अच्छे कपड़े हैं, कितने अच्छे आभूषण हैं, कितने अच्छे परिधान हैं। दुनिया भी यही देखती है। लोग देखते हैं कि दूल्हे राजा कितने सुंदर हैं। कितने सुंदर वस्त्र और आभूषण हैं। कन्या तो धन्य हो गई।

किससे धन्य हो गई? दूल्हा भले ही शराबी हो, भांग पीने वाला हो,

नशा करने वाला हो वह कोई नहीं देखता। लोग यह देखते हैं कि उसके शरीर पर कितने आभूषण लदे हुए हैं। कोई यह खोजबीन नहीं करता कि उसके पहने हुए आभूषण घर के हैं या किराये के! असली हैं या नकली! आँखें प्रदर्शन देखना चाहती हैं और हम प्रदर्शन में जीना चाहते हैं।

आते हैं सुनंदा की बात पर। सुनंदा कहती है, बहन जी! हकीकत यह है कि इन सबमें मेरी रुचि नहीं है। फिर भी यदि ऐसी कोई बात उठ जाए, किसी कारण से समाज में चर्चा हो कि इनकी पत्नी पार्टी, फंक्शन, शादी-विवाह में क्यों नहीं आती तो वे कह सकते हैं कि घर में भाई दिव्यांग है। उसकी देख-रेख करनी पड़ती है, इसलिए नहीं आ पाती। एक बार कह देने से सदा के लिए समाधान हो जाएगा। कोई चर्चा नहीं होगी। जब तक लोगों को पता नहीं होता है, तब तक अपना-अपना आइडिया लगाते हैं। मालूम होने के बाद भी यदि कोई चर्चा करे तो उसको कभी रोका नहीं जा सकता। चर्चा करनेवाले तो यह भी कर देंगे कि घर का तो ठिकाना ही नहीं है और पार्टी में घूम रही है। देवर बेचारा दिव्यांग है, उसकी देख-रेख नहीं करती और पार्टी में घूम रही है।

सुनंदा ने कहा कि यह तर्क दोनों तरफ चलता है और जिनको ऐसी चर्चा करनी होती है वे कभी अर्चा नहीं कर पाएंगे, चर्चा ही करेंगे। सत्य से उनको कोई लेना-देना नहीं होता है। उनकी रुचि चर्चा में रहेगी और वे चर्चा ही करेंगे। सत्य को जाननेवाले विरले होते हैं और सत्य पर विश्वास करनेवाले भी विरले होते हैं, इसलिए लोक-लुभावनी बातों से कोई मतलब नहीं है। सुरेश भी इनसान है। कर्मों की मार उसके वश की बात नहीं है। वह दिव्यांग है, अपंग है तो इसका मतलब यह नहीं है कि उससे नफरत की जाए। बल्कि ऐसे के प्रति दया और रहम का भाव ज्यादा होना चाहिए। करुणा की भावना ज्यादा होनी चाहिए।

सुनंदा ने आगे कहा- उसके प्रति दायित्व निर्वाह करने की भावना नहीं रखकर कभी पागलखाने में भरती कराने की बात होती है, तो कभी अनाथाश्रम में भेजने की। क्या इन बातों से हमारे परिवार की, हमारे खानदान की इज्जत रह पाएगी? जब यह पागल है ही नहीं तो जबरदस्ती पागल बनाकर पागलखाने में भेजना कहाँ तक उचित होगा। भले ही आज हम दुनिया की

आँखों पर चश्मा लगा देंगे, किंतु हमारा मन जान रहा है कि हमने कितना गलत किया है। हम दुनिया को समझा देंगे कि पागल हो गया, इसलिए पागलखाने में भरती करवा दिया, किंतु दुनिया इतनी भोली नहीं है। लोग वहाँ जाकर अनुभव करेंगे तो झूठ पकड़ा जाएगा और जिस दिन झूठ पकड़ा जाएगा उस दिन लोगों का विश्वास उठ जाएगा। उसने कहा कि यदि मेरी तरफ से घर की इज्जत पर कोई बट्टा लगा हो, उनकी इज्जत पर बट्टा लगा हो, मेरी तरफ से उनका कुछ भी बुरा हुआ हो तो आप मुझे बता दीजिए। आप जो दंड देंगी, मैं लेने के लिए तैयार हूँ, किंतु यह मुझसे कभी नहीं होगा कि दिव्यांग सुरेश को छोड़कर अलग हो जाऊँ, उसको अनाथाश्रम भेज दूँ, पागलखाने भेज दूँ। मैं उसकी सार-संभाल करूं मेरे लिए यह एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है। सबसे बड़ी बात मैंने माँजी को जबान दी है कि मैं उसकी सार-संभाल करूंगी। मैं माँजी को दिए विश्वास में विश्वासघात नहीं करना चाहती। मैंने आपको अपनी बात बता दी। अब आप इस बात पर विचार कीजिए, चिंतन-मनन कीजिए। कोई जल्दी नहीं है, आप सोच-समझकर फिर निर्णय दीजिए कि मुझे क्या करना चाहिए।

ननद-ननदोई ने सुनंदा की बात सुन ली। वे जानते हैं कि सुनंदा द्वारा कही गई बात सही है, किंतु उसका तोड़ क्या हो सकता है, उपाय क्या हो सकता है। वे सोचकर क्या जवाब देते हैं यह तो आप समय के साथ सुन पाएंगे। तपस्या का क्रम जारी है। कई तपस्वी लंबी तपस्या कर रहे हैं। इनसे भी हमें प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। इन्होंने खाने-पीने का ममत्व छोड़ा है। मासखमण करने के लिए खाना-पीना छोड़ दिया तो यह नहीं होगा कि पारणा करने के बाद हाथों-हाथ सब चीजें मिल जाएं। जैसी मासखमण की साधना की वैसी ही पारणा की साधना होनी चाहिए। खाऊँ, खाऊँ का मन नहीं होना चाहिए। शांत भाव से, समाधि भाव से शरीर को टिकाए रखने के लिए पारणा होता है। पुद्गलों को उसी रूप में ग्रहण करेंगे, अनासक्त भाव से ग्रहण करेंगे तो तथारूप उनका प्रभाव नहीं होगा। नहीं तो पुद्गलों का धक्का लगता रहेगा। उलझनें आगे चलती रहेंगी, कोई सुलझाने वाला नहीं रहेगा।

जैसे जंगल में रोते अकेले आदमी को कोई नहीं सुनता, वैसे ही हम यहाँ रोते रहेंगे तो कोई सुनने वाला नहीं है। इस संसार में अच्छी बात होगी तो

लोग कान बंद कर लेंगे। निंदा होगी, छल-कपट की बात होगी तो लोग सुनने को तैयार रहेंगे। जहाँ आत्महित की बात होती है वहाँ लोग अनदेखी कर देते हैं। हम प्रेरणा लेने की कोशिश करें। मनुष्य के रूप में अनमोल जीवन मिला है। पहले की तरह यह मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं चला जाए। यह जन्म मील का पत्थर साबित होना चाहिए। नयसार के भव को भगवान महावीर के जीव ने नींव का पत्थर बना लिया, नींव डाल दी। वैसे ही यह मनुष्य जीवन नींव का रूप बने। जल्दी से उस नींव पर मोक्ष का महल खड़ा करना है। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। फिलहाल इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

05 सितंबर, 2023

13

पुद्गल नहीं लुभाए मन को

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म सुख की रक्षा करनेवाला है, पर धर्म की समझ सही होनी चाहिए। धर्माराधना सम्यक् होनी चाहिए। पाँचों इंद्रियों के प्रत्येक इंद्रिय का एक-एक विषय होता है। कान शब्दों को सुनता है। आँख दृश्य देखती है। नाक गंध का ग्राहक है। रसना रस का अनुभव करनेवाली है या अनुभव करानेवाली है। स्पर्श इंद्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है।

इंद्रियाँ दुधारी तलवार के सदृश हैं। जैसे दुधारी तलवार का उपयोग दोनों तरफ से हो सकता है वैसे ही इंद्रियों से ज्ञान भी पैदा हो सकता है और उनसे आसक्ति भी पैदा हो सकती है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह उनसे ज्ञान प्राप्त करे या उनके विषयों के प्रति आसक्त हो।

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में एक सुंदर वर्णन आता है जो आपने बहुत बार सुना होगा। जीतशत्रु राजा के यहाँ भोजन की व्यवस्था होती है। उसमें सुबुद्धि प्रधान भी आमंत्रित था। सम्राट के वहाँ भाँति-भाँति के व्यंजन परोसे गए। लोग प्रशंसा करते हुए अघा नहीं रहे थे, किंतु सुबुद्धि प्रधान कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा था। वह मौन रहा। सम्राट ने पूछा, क्यों दीवान जी! कैसा लगा? उसने कहा, हुजूर! पुद्गलों का स्वभाव है। सुगंध वाली चीज दुर्गंध में परिवर्तित हो जाती है और दुर्गंध वाली सुगंध में परिवर्तित हो जाती है। आज जो पदार्थ रमणीय लग रहे हैं, कल वीभत्स लग सकते हैं। परिणमन होता रहता है।

सम्राट को यह बात सुहाई नहीं, फिर भी शांत रह गए। सम्राट एक बार भ्रमण के लिए निकले। साथ में सुबुद्धि प्रधान भी था। चलते-चलते बीच में गटर आ गया। गटर से भयंकर दुर्गंध उठ रही थी। दुर्गंध से बचने के लिए सम्राट ने नाक के सामने कपड़ा लगा लिया। सुबुद्धि प्रधान शांत भाव से चल रहा था। सम्राट ने कहा, अरे भाई! इतनी दुर्गंध है तुम भी कपड़ा लगा लो। उसने कहा, हुजूर! यह तो पुद्गलों का स्वभाव है।

यह बात सम्राट को सुहाएगी क्या? सम्राट के मन में आ गया कि यह हेकड़ी ज्यादा लगाता है। कोई भी बात करूँ तो सीधा उत्तर नहीं देता। सम्राट ने कहा- ऐसा कहने से काम नहीं चलेगा, तुम्हें इसका प्रयोग करके बताना होगा कि सुगंध वाली चीज दुर्गंध में बदल जाती है और दुर्गंध वाली चीज सुगंध में बदल जाती है।

सुबुद्धि प्रधान ने कहा, ठीक है हुजूर! उसने गटर का पानी मँगवाया और घड़ों में भरकर रखा। उसमें कुछ पदार्थ मिलाए। सात-सात दिन में उस पानी का परिष्करण किया गया। सात सप्ताह बीतने पर वह पानी एकदम सुगंधित हो गया। मधुर हो गया। सुबुद्धि प्रधान ने सम्राट को भोजन करानेवालों को वह पानी देते हुए कहा कि आज सम्राट के पीने के लिए यह पानी रखना।

उस पानी को पीते ही सम्राट ने पूछा, आज इतना मधुर और सुगंधित पानी कहाँ से लाए?

लोगों ने कहा, हुजूर! सुबुद्धि प्रधान ने यह पानी भिजवाया है और कहा है कि यह पानी आपके लिए रखा जाए। सम्राट ने कहा, सुबुद्धि प्रधान को बुलाओ। उसको बुलाया गया। सुबुद्धि प्रधान आया तो सम्राट ने कहा, अरे वाह! तुम बड़े होशियार आदमी हो। तुम्हारे घर में ऐसा सुगंधित पानी और मेरे लिए सिर्फ आज ही यह व्यवस्था की। सुबुद्धि ने अपनी पुरानी बात दोहराते हुए कहा, हुजूर! पुद्गलों का स्वभाव है। उसने बात जारी रखते कहा कि यह उसी गटर का पानी है जिसकी दुर्गंध से आप परेशान हो रहे थे और नाक के सामने कपड़ा लगाकर चले थे। आपने कहा था इसका परिणमन करके बताओगे तो समझूँगा। उसी का मैंने परिणमन किया है।

आप विश्वास कर लेंगे क्या?

आपको विश्वास नहीं होगा। आप बोलेंगे, ऐसा कैसे हो सकता है। आप यह मत समझना कि आज ही विज्ञान ने नये-नये उपाय बताए हैं। पानी साफ करने की कई मशीनें लगा दीं। जो काम आज की मशीनें नहीं कर रही हैं वैसे काम पहले बुद्धि से किए जाते थे। आज पानी को परिष्कृत करने पर उसके भीतर के बहुत-से लाभदायक तत्त्व भी नष्ट हो जाते हैं, किंतु पहले जिस तरह से शोधन किया जाता था, उसमें पोषक तत्त्व नष्ट नहीं होते थे।

बात राजा के भी गले नहीं उतरी होगी। सुबुद्धि ने कहा, हुजूर! आप मेरे साथ मेरे घर चलिए। उसने घर में घड़ों में भरे हुए मलबे को दिखाया और राजा को सारी बात बताई तब बात राजा के समझ में आ गई।

कोई भी पदार्थ सदा एकसमान नहीं रहता। सुगंधित पदार्थ दुर्गंधित में बदल जाते हैं और दुर्गंधित सुगंधित में। अच्छे वर्ण वाले पदार्थ बहुत बार विवर्ण हो सकते हैं। वैसे यह बात समझाने की आवश्यकता नहीं है। यह अनुभव की बात है।

आप लोग घरों में सब्जी, फल आदि लाते होंगे। जब उसे लाते हैं, तब कैसा रहता है और चार-पाँच दिन बाद उसका रूप-रंग कैसा हो जाता है। यदि फ्रिज में नहीं रखा तो उसका रूप कैसा होगा? केले का एक गुच्छा लाकर घर पर रखे और भूल गए कि केला रखा है तो चार-पाँच दिन बाद उसकी स्थिति कैसी हो जाएगी? केले सड़ जाएंगे। उसमें सड़न कैसे आई?

यह पुद्गलों का स्वभाव है। आदमी किसमें मुग्ध हो रहा है? आदमी पुद्गलों में मुग्ध होता रहा है। व्यक्ति पदार्थों को देखकर कहता है कि यह सुंदर पदार्थ है, सुगंधित पदार्थ है। सुंदर-सुगंधित पदार्थ मानकर वह उसमें आसक्त हो जाता है। यह अज्ञान की परिभाषा है। ज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता है, अनुभव प्राप्त करता है। वह फँसता नहीं है। अज्ञान जब भीतर बना रहता है तो वह फँसा देता है। अशांत बना देता है।

सूर्य विकासी कमल के भीतर पराग लेने के लिए एक भँवरा बैठा हुआ था। सूर्यास्त होते ही उसकी पंखुड़ियाँ सिमटने लगीं। उसने सोचा कि थोड़ा और पराग ले लूँ फिर उड़ूँगा। इतने में कमल की पंखुड़ियाँ सिकुड़ गईं। रात भर भ्रमर उसी में बंद रहा। सुबह होने तक वह जिंदा नहीं रहा। गंध में मुग्ध

होने का उसको वह परिणाम मिला। इसलिए कहा गया है कि किसी भी पदार्थ के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में आसक्त नहीं होना चाहिए। जीवन निर्वाह के लिए उनका उपयोग करना है तो उपयोग करने के बाद वह चीज, वह स्वाद दिमाग में नहीं बसना चाहिए। कोई खाद्य पदार्थ खाते हुए भी यह नहीं सोचना चाहिए कि बड़ा स्वादिष्ट है।

जैसे दर्पण के सामने से हट जाने पर दर्पण साफ हो जाता है, उस पर कुछ अंकित नहीं रहता वैसे ही खाने के बाद रस या सुगंध की बात दिमाग में जमी नहीं रहनी चाहिए। बात जमी रहेगी तो मन में घर बनाएगी। फिर अगले दिन खाने बैठने पर याद आएगा कि कल बड़ा सुंदर व्यंजन था। बड़ा स्वाष्दिट भोजन था। आज सब्जी में स्वाद नहीं है। आज मिठाई वैसी नहीं है।

इससे फायदा क्या होगा? इससे फायदा क्या होने वाला है? ऐसे तुलना करने से कोई फायदा नहीं होने वाला है। कल की वस्तु का स्वाद दिमाग में बना रहेगा तो ऐसी तुलना हो जाएगी। इसलिए कल क्या खाया उसे भूल जाओ।

तिंवरी के पीरदान जी बाँटा खा गए। माता ने भूल से बाँटा परोस दिया और वे खाकर चले गए। कोई प्रतिक्रिया नहीं की। बाद में माता को मालूम पड़ा तो कहा, बेटा! तुमने यह क्या किया? पीरदान जी ने कहा, माँ! क्या हो गया। पेट भरना था, वह भर गया।

खाना किसलिए खाते हैं?

शरीर का निर्वाह करने के लिए खाना खाया जाता है। भगवान ने यह नहीं बताया कि साधु बन गए या श्रावक बन गए तो संथारा कर लो। यह गलत काम हो जाएगा, आत्महत्या का रूप बन जाएगा। संथारे का समय बताया गया है। साधक को जब लगे कि अब अपने शरीर से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना नहीं हो रही है, शरीर उसके लिए सक्षम नहीं रहा, तब उसे तैयारी करनी चाहिए कि यह शरीर मुझे छोड़े इसके पहले ही मैं इसको छोड़ दूँ। छोड़ देने का मतलब गलत मत समझना। छोड़ देने का मतलब है इसको भोजन देना बंद कर देना। इसकी सार-संभाल करना बंद कर देना। इसका परिकर्म नहीं करना। ऐसी तैयारी करनेवाला शांत भाव से विषयों और कषायों का त्याग

करता है, शरीर के ममत्व का त्याग करके अपश्चिम मारणांतिकी संलेखना स्वीकार कर लेता है। यह संथारे की अवस्था है। इसलिए जब तक वह अवस्था नहीं आती, जब तक शरीर से ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना संभव है, तब तक उसको खुराक देनी चाहिए। यह सोचकर खुराक देनी चाहिए कि शरीर को अभी चलाना है। यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना और साधना में सहयोगी है।

श्रीमद् उत्तराध्ययन सूत्र में शरीर को नौका और साधक को खेवैया कहा गया है। इस नौका से 14वां गुण स्थान प्राप्त करके मोक्ष के किनारे तक पहुँचने में समर्थ बन सकते हैं। नदी पार करनेवाला कोई व्यक्ति नदी के एक किनारे से नौका पर सवार होकर दूसरे किनारे पर पहुँच गया तो उसे उस नौका को छोड़ देना होता है। ऐसा नहीं होता कि वह उसी में बैठा रहे।

उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि नौका ने एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँचाकर उपकार किया है तो इसको कैसे छोड़ूँ। ऐसा सोचने वाला नौका में ही बैठा रह जाएगा। वह नदी पार नहीं कर पाएगा। वैसे ही साधक संसार-सागर को पार करने के लिए शरीर रूपी नौका का उपयोग करता है और जैसे ही मोक्ष का किनारा आता है, शरीर को छोड़कर सिद्ध-बुद्ध हो जाता है। परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। सारे दुखों का अंत कर लेता है। अत: नौका रूपी शरीर की रक्षा इसीलिए करनी है ताकि संसार-सागर को पार किया जा सके। यदि नौका कमजोर होगी और किनारा दूर होगा तो वह दूसरे किनारे तक नहीं पहुँच पाएगी। दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए शरीर रूपी नौका मजबूत होनी चाहिए। शरीर को मजबूत रखने के लिए उसे खुराक दी जाती है, किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि स्वाद में आसक्त हो जाएं, गंध में आसक्त हो जाएं। उनमें आसक्त होने वाला अपने जीवन को दाँव पर लगा देगा। वह उसी तरह अपने जीवन को दाँव पर लगा देगा, जिस तरह महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वयं को और अपने चारों भाइयों को जुए में दाँव पर लगा दिया था।

इससे कैसे बचाव हो सकता है, इसे एक उदाहरण में समझें। किसी भी ट्रस्ट के ट्रस्टी का कर्तव्य होता है कि वह ट्रस्ट को चलाए। वह ट्रस्ट का मालिक नहीं होता। केवल उसका रक्षक होता है। वह जानता है कि यह संपत्ति

मेरी नहीं है, इसकी रक्षा करने का दायित्व मेरा है। मुझे इसकी रक्षा करनी है। सार-संभाल करनी है। जब वह ट्रस्टी पद से इस्तीफा दे तो उसके मन में दुख नहीं होना चाहिए। ट्रस्टी का लगाव ट्रस्ट से होता नहीं है, कोई कर ले तो बात अलग है। कई लोग ट्रस्टी होते हुए भी मालिक बन जाते हैं। ट्रस्टी बदलते ही उनके मन में पीड़ा होती है कि मैं इतने सालों तक ट्रस्टी बना रहा, अब मुझे हटाया जा रहा है, बदला जा रहा है। पीड़ा तब होती है जब वह अपने को मालिक मान लेता है। ट्रस्ट को अपना मान लेता है।

यदि किसी संस्था का नियम है कि दो साल के लिए अध्यक्ष, मंत्री बनेंगे और दो साल के बाद नया चुनाव होगा तो दो साल बाद नया व्यक्ति आ जाने पर पुराने वाले को दुख नहीं होगा। हमारे समाज में कुछ लोग दुखी हो जाते हैं, किंतु राजनीतिक क्षेत्र में दुखी नहीं होते। विधानसभा या लोकसभा का सदस्य पुन: चुनाव होने पर जीतेगा ही, निश्चित नहीं है। हार जाने पर उसको दुख नहीं होता। थोड़ा-सा दुख होता भी होगा, किंतु वह जानता है कि यह तो चुनावी खेल है। जनता-जनार्दन जिसको जिता दे उसको वह स्वीकार करता है। हारने वाला यदि मन में गाँठ बाँध ले कि जनता ने मेरे साथ धोखाधड़ी की, मैं जनता को मजा चखाऊँगा तो वह दुखी होगा। होगा क्या हो ही गया।

इसलिए गाँठ नहीं बाँधनी चाहिए। जैसे मंत्री या मुख्यमंत्री अपने कार्यकाल के बीच में पार्टी द्वारा बदल दिए जाने पर सोचते हैं कि पार्टी की व्यवस्था है, वैसे ही हमें भी शरीर के प्रति निस्पृह रहना चाहिए। शरीर के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। न खाने-पीने के प्रति आसक्ति होनी चाहिए और न ही कपड़ों के प्रति। यह सोचना चाहिए कि शरीर के निर्वाह के लिए खा रहा हूँ। लज्जा ढकने के लिए वस्त्रों का उपयोग कर रहा हूँ। यह आसक्ति से बचाव का उपाय है।

ज्ञानीजनों की भाषा में इसे तटस्थ भाव से जीवन जीना बताया गया है। किसी भी चीज में आसक्त नहीं बनें। किसी भी चीज, किसी भी पदार्थ में आसक्त होने पर दुख से मुक्त होना मुश्किल है।

सुनंदा की बात को कुछ आगे बढ़ाते हैं। उसको समझाते हुए ननद और ननदोई अपने-अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। सुनंदा ने अपनी बात कही

कि सुरेश को छोड़ देना उसके लिए संभव नहीं होगा। इसके अतिरिक्त और जो भी आपका आदेश हो, आज्ञा हो, मैं स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
आदेश अन्य आप करावें, नणंद निर्णय ले नहीं पावें,
फिर भी कहती बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार,
सुरेश सचमुच है दुर्भागी, तभी तो नफरत इससे जागी,
है कर्मों का खेल, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार,
मेरा भी है सगा भाई, चाहूँ न उसकी मैं परछाई,
स्पष्ट है यह बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

देखने, सोचने और कहने का नजरिया सबका भिन्न-भिन्न होता है। सुनंदा भी कह रही है कि सुरेश बेचारा कर्मों का मारा हुआ है और शर्मिला भी कह रही है कि कर्मों का खेल है। शर्मिला ने कहा- भाभी! तुम इतना विचार कर रही हो, किंतु वह स्वयं दुर्भागी है, कर्मों का मारा हुआ है। वह मेरा और विजय का भाई है, किंतु मैं इसकी परछाई भी देखना पसंद नहीं करती। मेरे मन में भी इसके प्रति घोर नफरत भरी हुई है। यह तो तुम भी मान रही हो कि कर्मों के खेल निराले होते हैं। ऋषि-मुनि भी कर्मों को जीत नहीं पाते, उनसे हार जाते हैं।

कर्मों के खेल निराले हैं, ऋषि-मुनि भी इनसे हारे हैं
कर्मों के खेल निराले हैं...

सुरेश कर्मों का मारा है। विजय और उसकी बहन नफरत करके नये कर्मों का बंध करनेवाले हैं। जिसका यह विचार हो जाता है कि जो मैं सोच रहा हूँ, वही सही है वह गलत दिशा में चला जाता है। व्यक्ति को सत्य दृष्टि से, सत्य न्याय से विचार करना चाहिए। यदि कोई कर्मों के कारण से दुखी है तो इसका मतलब यह नहीं है कि उसे और दुख दें। उसे पीड़ित करें। यह न्याय नहीं है। अपनी सोच होनी चाहिए कि हम कैसे तटस्थ रह सकते हैं, अपने भावों को कैसे पवित्र बनाए रख सकते हैं। इससे विपरीत सोच दूसरों का कुछ बिगाड़ करे या नहीं, किंतु अपना बिगाड़ अवश्य करने वाली बन जाएगी।

शर्मिला ने कहा कि भाभी! मेरा सुझाव है कि आप इस पचड़े में मत

पड़ो। तुमने इस बात को पकड़ लिया और पचड़े में पड़ गई। सबके अपने-अपने कर्म होते हैं।

वह कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने पाप और पुण्य होते हैं। जिसका जैसा पाप और पुण्य होता है, वह वैसा ही उसका भोग करता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि तुम इस लफड़े में मत पड़ो। सुरेश के कर्म ही ऐसे हैं तो तुम और मैं क्या करेंगे। भाई मेरा भी है, किंतु वह कर्मों का मारा है। मेरा सुझाव है, मेरी राय है कि तुम तटस्थ हो जाओ। सुरेश के संबंध में जो निर्णय लेना है, वह विजय और मेरे पर छोड़ दो।

ननद और भाभी के बीच की चर्चा की आवाज दूसरे रूम में बैठे हुए विजय के कानों में जा रही थी। बहुत देर तक विजय चुप्पी साधे बैठा रहा। वह चुप जरूर था, किंतु मन शांत नहीं था। वह मन-ही-मन क्रोधित हो रहा था। दोनों की बातें सुनते-सुनते जब उससे रहा नहीं गया तो दरवाजा खोलकर बाहर आया।

आग बबूला होकर आया, निज को वश में रख ना पाया,
रखूँ न घर क्षण एक, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...
मेंटल हॉस्पिटल में भेजूँ और साथ में तुमको भेजूँ,
यदि ना मानो बात, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

विजय आग-बबूला हुआ। उसके हाथ काँप रहे थे, होंठ फड़फड़ा रहे थे, आँखें लाल हो रही थीं। वह आक्रोश में कहता है, ठहरो! बहुत हो गया। चर्चा सुनते-सुनते में थक गया। जब समझाने वाले समझा रहे हैं तो समझना चाहिए। यह जिद है कि जो बात पकड़ ली वह होकर रहेगी। विजय कहता है कि मैं सुरेश को मेंटल हॉस्पिटल भेजूंगा, पागलखाने भेजूंगा, देखता हूँ कि कौन है मुझे रोकनेवाला। मैं एक क्षण भी उसको घर में नहीं रखनेवाला। यदि सुनंदा नहीं मान रही है तो उसको भी साथ में हॉस्पिटल में भरती करवाऊंगा, किंतु सुरेश को घर में नहीं रखनेवाला।

गुस्से में वह बहुत साफ शब्दों में नहीं बोल पा रहा था। उसकी भाषा बिगड़ रही थी। गुस्से में बोलनेवाला लय में नहीं बोल पाता। वह बोलना कुछ चाहता है और मुँह से कुछ और निकल जाता है। क्रोधित व्यक्ति यह नहीं समझ

पाता कि वह क्या बोल रहा है और क्या बोलना चाहिए था। क्रोध भी शराब से कम नहीं है। जैसा शराब का नशा होता है लगभग वैसा ही नशा अहंकार और क्रोध का होता है। अहंकार के नशे से क्रोध पैदा होता है और व्यक्ति बेकाबू हो जाता है। बेलगाम हो जाता है। वह किसी के रोके रुकता नहीं।

विजय सुरेश को उठाने लगा तो सुनंदा ने बीच में आकर कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। इसका भी घर पर अधिकार है। कौन है इसको घर से हटानेवाला!

अब क्या होगा? विजय का क्रोध और भड़केगा या शांत होगा?

(श्रोतागण बोले– क्रोध और भड़केगा)

क्यों भड़केगा? सुनंदा ने कोई गलती थोड़ी की। किंतु गलत और सही का खेल नहीं है। खेल है अपनी बात का। बात की पकड़ इतनी भयंकर होती है कि आदमी मरने–मारने तक के लिए तैयार हो जाता है। बात की पकड़ के पीछे जीवन का प्रभात कभी प्रकट नहीं हो पाता। जीवन सदा अँधेरे में झूलता रहता है। मेरी बात, मेरी बात होती रहती है। किसकी बात रह गई?

दुर्योधन बड़बोला था। क्या उसकी बात रह गई? वह अमर रहा क्या? रावण अमर रह गया क्या? न रावण की बात रही, न कंश की बात रही। कंश बोल रहा था कि देवकी की हर संतान मेरे घर पर होनी चाहिए। उसको उसने अपनी कैद में रखा। वह कहता था कि उसकी एक भी संतान को जिंदा नहीं छोड़ूंगा। उसकी संतान को मारने के लिए उसने बहुत सारे उपाय किए, किंतु परिणाम क्या हुआ। भवितव्यता को टालने की क्षमता किसमें है?

खैर, विजय का क्रोध सातवाँ आसमान छूने लगा। उसे क्रोध बहुत आता था। वह तो सुनंदा सहनशील थी, इसलिए गाड़ी पटरी पर चल रही थी, नहीं तो गाड़ी कब बेपटरी हो गई होती, कोई पता नहीं पड़ता। यदि दोनों तरफ खिंचाव हो जाए तो पटरी पर गाड़ी चलना मुश्किल हो जाती। सुनंदा अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित थी किंतु फालतू की झंझट नहीं पालती थी। वह गुस्से का बदला गुस्से से नहीं ले रही थी, जबकि गुस्सा आना स्वाभाविक था।

विजय जब यह कह रहा था कि सुनंदा को भी हॉस्पिटल में भरती करवा दूँगा, उस समय भी सुनंदा को गुस्सा नहीं आया। विजय सुनंदा पर गुस्सा निकालने ही वाला था कि बहन बीच में आकर कहती है कि भैया! यह क्या

कर रहे हो। ऐसा काम नहीं करना।

विजय अपनी बहन से कहता है, तुम बीच में से हट जाओ। आज मुझे निर्णय करने दो। जो होना है आज ही हो जाए।

बेहोशी में आदमी क्या-क्या कुकर्म नहीं कर बैठता! कई लोग मर्डर कर देते हैं। दो-चार दिन पहले किसी ने बताया कि एक व्यक्ति ने कुल्हाड़ी से अपने बाप को मार डाला।

बंधुओ! इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि क्रोध किसी चांडाल से कम नहीं है। उसका रूप बहुत भयानक होता है। वह केवल इसी जन्म में दुख नहीं देता। जन्मों-जन्म तक दुख देता है। फिर भी लोग सोचते हैं कि हमारी रक्षा करनेवाला क्रोध है। यह नासमझी की बात है। क्रोध कभी अपना नहीं हुआ और न ही कभी होगा। कई सोचते हैं कि क्रोध से अपनी बात मनवा लूँगा, किंतु यह नासमझी की बात है।

बहन के बीच में आ जाने से उस समय विजय रुक गया। अब आगे क्या परिणाम आता है, क्या सोच होती है, यह समय के साथ सुन पाएंगे। कहानी भी सुन रहे हैं, उपदेश भी सुन रहे हैं, किंतु उसका उपयोग क्या हो रहा है। खाली मनोरंजन के लिए नहीं सुनना है। सुनने के साथ-साथ यह भी विचार करना चाहिए कि जीवन में सुधार कैसे हो। अपना लक्ष्य होना चाहिए कि गुस्सा नहीं आए। अपितु उलझी हुई गाँठ को सुलझाने का प्रयत्न होना चाहिए। मनुष्य जन्म में यदि उलझनों को नहीं सुलझा पाए तो दूसरे जन्मों में इतनी समझ भी नहीं मिलेगी।

इसलिए धैर्य से विचार करें, शांत भाव से विचार करें कि क्या करणीय है और हम क्या कर रहे हैं! विचार करें, शरीर के प्रति, पुद्गलों के प्रति प्रीत है क्या! विचार करें, आसक्ति है या नहीं है! विचार करने के साथ समीक्षा करें। कहीं पर भी यदि आसक्ति और लगाव का भाव मालूम पड़े तो उसका संशोधन करें। ऐसा करने पर मंजिल की ओर आगे बढ़ पाएंगे।

तपस्याएं निरंतर गतिमान हैं। उसकी अनुमोदना से अपनी आत्मा को पवित्र बनाने का लक्ष्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

06 सितंबर, 2023

14

विवेक प्रज्ञा जगे हमारी

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

'धर्म सदा सुख त्राण' अर्थात् धर्म सदा सुख की रक्षा करनेवाला है। धर्म सुख देने वाला है। सच्चे सुख की प्राप्ति धर्म से होगी। भौतिक सुख की प्राप्ति भी धर्माराधना से होती है। भगवान से पूछा गया कि वंदना करने का लाभ क्या है? बताया गया कि वंदना करने से व्यक्ति अप्रतिहत सौभाग्य को प्राप्त करता है, साथ ही अशुभ कर्मों का क्षय व शुभ कर्मों का उपार्जन होता है। इसको थोड़ा समझने का प्रयत्न करें। धर्माराधना कर्मों की निर्जरा का हेतु है। धर्माराधना से कर्मों की निर्जरा होती है, किंतु धर्माराधना के साथ मन, वचन और काया की प्रवृत्ति भी होती है। धर्म का लाभ तो कर्मों की निर्जरा हो गया। मन, वचन, काया की प्रवृत्ति का लाभ क्या होगा?

मेरी बात समझ में आ रही है ना? धर्माराधना का लाभ तो मिल गया कि उससे कर्मों की निर्जरा हो गई, किंतु उसके साथ में मन, वचन, काया के योगों की प्रवृत्ति हो रही है या नहीं? धर्माराधना करते हुए मन, वचन और काया की प्रवृत्ति शुभ में होती है तो पुण्य का उपार्जन होता है। उससे व्यक्ति सद्गति को प्राप्त करता है। उससे दिव्य भोगों की प्राप्ति होती है। वहाँ शुभ योग में रहा तो फिर मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है। उसको दस बोलों की प्राप्ति होती है। फिर वह छोटा परिवार वाला नहीं होगा, बड़े परिवार वाला होगा। बहुत से इष्ट-कांत मित्र होंगे। प्रिय मित्र मिलेंगे। प्रिय लोग मिलेंगे।

शालिभद्र की छवि अपने सामने ले लें। उसे सुख-सुविधाओं की कमी नहीं थी। जमीन-जायदाद की कमी नहीं थी। नौकर-चाकर मिले। जमीन-जायदाद मिली। धन मिला। उसने सुख के सारे साधन धर्माराधना से प्राप्त किए। धर्माराधना करने से आत्मिक सुख भी मिलता है, संतोष भी मिलता है, आनुषांगिक रूप से पुण्य का उपार्जन भी होता है। तद्जन्य सुख भी जीव को प्राप्त होता है। मन, वचन और काया ऊँचाइयों पर ले जाने वाले भी होते हैं और अधोगति में ले जाने वाले भी। मन, वचन, काया साधन है। जैसे चाकू से सब्जी भी सुधारी जाती है और किसी का मर्डर भी किया जा सकता है। चाकू से दो काम किए जा सकते हैं। किसी को सुधारने का काम भी किया जाता है और किसी का मर्डर करने का काम भी किया जाता है। किसी की रक्षा भी की जा सकती है और किसी की हत्या भी की जा सकती है।

डॉक्टर का चाकू मरीजों की रक्षा करता है। हालांकि चाकू अपने आपमें कुछ भी नहीं है। प्रयोग करनेवाले के ऊपर है कि वह चाकू से किसी की रक्षा के लिए उद्यत हो रहा है या मर्डर करने के लिए। जैसे चाकू माध्यम है, वैसे ही मन, वचन और काया भी माध्यम है। उसके प्रयोग के अनुसार उससे लाभ या हानि होगी। अशुभ में चलाने पर पाप कर्मों का बंध होगा और शुभ में चलाएंगे तो पुण्य का उपार्जन होगा।

मधुर शब्द सुन मृग शिकारी के जाल में फँस जाता है। आँखों का विषय आदमी को लोभी बना देता है और वह उसमें फँस जाता है। गंध से भी फँस जाता है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 32वें अध्ययन में बताया गया है कि पाँच इंद्रियों और पाँच विषयों का क्या परिणाम होता है। जिह्वा रस को ग्रहण करती है, रस के अधीन रहती है। रस उसका ग्राह्य है। यहाँ तक सिंपल बात है। इसके आगे किसी पदार्थ के प्रति जब मनोज्ञ-अमनोज्ञ के भाव बनते हैं तो स्थिति बदल जाती है। यथा- यह मनोज्ञ है, स्वादिष्ट है। अरे! यह क्या है, इसमें तो कोई स्वाद ही नहीं है, कोई जायका ही नहीं है। एक पदार्थ मनोज्ञ हो गया और एक अमनोज्ञ हो गया। रस वाले पदार्थ के प्रति राग भाव पैदा हुआ और बेस्वाद पदार्थ के प्रति द्वेष पैदा हो गया। राग वाले पदार्थ को विशेष रूप से ग्रहण करने का लक्ष्य रहता है जबकि जो पदार्थ अच्छा नहीं लगा वह सामने आने पर

नाक-भौह सिकुड़ने लगती है। चेहरे की रंगत बदल जाती है। वैसे चेहरे की रंगत तो बाद में बदलती है, उससे पहले विचार बदल जाते हैं। जिस रस में जो आसक्त होता है, वह उसे जल्दी-जल्दी खाने की कोशिश करेगा। शास्त्रकार उसे 'खद्धं-खद्धं' कहते हैं।

तीन-चार कुत्ते एक साथ खड़े हों और कोई उन्हें रोटियां डालें तो वे जल्दी-जल्दी खाने की कोशिश करेंगे। वे सोचेंगे कि कोई दूसरा मुँह नहीं लगा ले। कोई दूसरा मुँह लगाने की कोशिश करेगा तो कुत्ता भौंकने लगेगा। उसको काटने की कोशिश करेगा। वह स्वयं अपने आपको तृप्त करना चाहता है। जहाँ राग भाव बनता है वहाँ धीरे-धीरे आसक्ति पैदा होती जाती है।

आसक्ति बढ़ने के बाद क्या होता है?

व्यक्ति चाहता है कि और मिले... और मिले... यह और मिलने की अभिलाषा मन को बेताब कर देती है। गुटखा, पान पराग खाने वालों पर थोड़ी देर तक उसका असर रहता है। जैसे ही असर मंद होने लगता है उनका मन विचलित होने लगता है। उनका मन कहता है कि और चाहिए... और चाहिए... वह सोचता है कि थोड़ा और मिल जाए। थोड़ा और मिल जाने पर उसको ठीक लगता है। आसक्ति के कारण होने वाली ऐसी तलब को तृष्णा कहते हैं।

शास्त्रकार कहते हैं कि जो तृष्णा के अभिभूत हो जाता है, वह अनेक प्रकार के चराचर जीवों की हिंसा करनेवाला होता है। वह सोचता रहता है कि मुझे अपना इच्छित पदार्थ चाहिए। उसके लिए वह किसी को मारने के लिए भी तैयार हो जाएगा। चराचर का मतलब है चलने (चर) और नहीं चलने (अचर) वाला।

चलने वाले जीव कौन-कौन-से हैं?

त्रसकाय के जीव चलने वाले हैं और नहीं चलने वाले जीव स्थावर हैं। व्यक्ति स्थावर जीवों की हिंसा करने के लिए उद्यत होता है। त्रसकाय जीवों की हिंसा करने में भी उसको कोई शंका नहीं होती।

मनुष्य का मांस भी अब प्लेटों में आने लगा है। मनुष्य की हड्डियों का अचार बनने लगा है। खाने वाले बड़े प्रेम से खाते हैं। मनोज्ञ भाव से खाते हैं।

पूरा आँकड़ा मुझे याद नहीं है, किंतु लगभग पाँच लाख बच्चे हर वर्ष गायब हो जाते हैं। ये बच्चे कहाँ जाते हैं? किसी की किडनी निकाली जाती है तो किसी का हार्ट निकाला जाता है। उनके माँस का या तो उपयोग कर लिया जाता है या बेच दिया जाता है या फेंक दिया जाता है। गर्भवती माताएं जो भ्रूण हत्या करवाती हैं, उन भ्रूणों का विक्रय होता है और उनका माँस प्लेटों में आ जाता है। उनकी हड्डियों का अचार बना लिया जाता है।

एक पुस्तक में बताया गया है कि यह कार्य चीन में ज्यादा चलता है। कहीं से भी चले, धीरे-धीरे फैल जाता है। कोरोना किसी एक जगह से चला। फैला तो सारे विश्व में फैल गया। पशुओं का मांस तो पहले से ही चल रहा था, अब मनुष्य का मांस भी चलने लगा है। यह पाँचवें आरे का तोहफा है कि मनुष्य का मांस भी लोगों को खाने के लिए मिल रहा है। धीरे-धीरे यह कहाँ तक फैलेगा? यह बीमारी कहाँ तक फैलेगी? कुछ भी पता नहीं है कि यह कहाँ तक फैलेगी। तृष्णा के अभिभूत व्यक्ति क्या-क्या तांडव कर रहा है कुछ भी पता नहीं चलता। मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। मनुष्य को कोहिनूर हीरे के समान मन मिला है पर यह सोचने का विषय है कि उसका उपयोग हो रहा है या दुरुपयोग!

आपने कभी कुत्ते को देखा होगा। किसी इनसान या पशु की हड्डी को वह देखता है तो उसे चबाने की कोशिश करता है। वह दाँत से हड्डी को दबाता है। हड्डी में से तो खून नहीं निकलता पर उसी के मसूड़ों से खून निकलकर हड्डी पर आ जाता है। दाँत के सहारे खून आ जाता है, वह हड्डी को दबाता जाता है। उसको रक्त मिलता रहता है। खुद के मसूड़ों से निकल रहे खून में वह मुग्ध रहता है। वह बार-बार हड्डी को दबाता है और खून को चाटता है। हड्डी में आसक्त होकर उसे बार-बार दबाने से वह अपनी ही हानि करनेवाला बन जाता है। वैसे ही जो मनुष्य खाद्य पदार्थों में, रसों में आसक्त हो जाता है, उसकी दशा विचित्र होती है। शास्त्रकार कहते हैं कि वह दुर्गति का मेहमान होता है। उसके दिमाग में यह बात घूमती रहती है कि वह चीज मुझे मिले, यह चीज मुझे मिले। उसे प्राप्त करने के लिए वह रात-दिन सक्रिय रहता है।

आपसे पूछ लें कि धन क्यों कमा रहे हैं तो क्या जवाब देंगे? संग्रह

करने के लिए कमा रहे हैं या किसी कार्य के लिए? कमाना एक बात है और संग्रह करना दूसरी बात है। आप लोग संग्रह करने के लिए कमाते हैं या नहीं?

(श्रोतागण बोले– संग्रह करने के लिए कमाते हैं)

संग्रह किसलिए किया जाता है?

संग्रह इसलिए करते हैं कि अपनी सुविधा की चीजें प्राप्त करूंगा। बड़ा सेठ होने का नाम होगा। धनाढ्य हो जाऊंगा।

नाम से पेट भर जाएगा क्या? किसी चक्रवर्ती का नाम जपने से चक्रवर्ती बन जाओगे क्या? सुख मिल जाएगा क्या?

लोगों को नाम, पद–प्रतिष्ठा की भूख लगी रहती है। पेट की भूख मिटाई जा सकती है, किंतु मन की भूख मिटा पाना बहुत मुश्किल है। तृष्णा को मन की भूख कहते हैं। मन की भूख पैदा होने पर मन उसके लिए लालायित रहता है। उसी का नाम तृष्णा है। तृष्णा का कोई पार नहीं है। जैसे वैतरणी नदी (नरक की नदी) को पार करना कठिन है वैसे ही तृष्णा की महानदी को पार करना बहुत कठिन है। तृष्णा को नदी नहीं सागर कहना चाहिए। तृष्णा होने पर कितना भी प्राप्त हो जाए, संतोष नहीं होगा। मन कहेगा कि और हो जाए... थोडा और, थोड़ा और...

जिसे और–और की बीमारी हो जाती है वह इधर–उधर ठोकर खाता रहता है। उसको कहीं ठौर नहीं मिलता। और का कोई छोर नहीं होता। उसका कोई ठिकाना नहीं होता। वह कभी किसी गति में, कभी किसी गति में रहता है। कभी नरक में तो कभी निगोद में रहता है। पता नहीं वह कौन–कौन–सी अवस्थाएं भोगेगा। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि हे भव्य प्राणियो! मनुष्य जन्म मिला है, समझने की बुद्धि मिली है तो उसका सही उपयोग करो।

'पन्ना समिक्खए धम्मं'

अर्थात् प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करो और तत्त्व का विनिश्चय करो। यथार्थ को जानने की कोशिश करो। वह कोशिश कब होगी, जब बुद्धि में थोड़ा–सा स्थान मिलेगा। बुद्धि को खाली करो। बुद्धि पहले से भरी हुई है। उसे थोड़ा विश्राम नहीं मिलेगा तो वह तत्त्व का विनिश्चय नहीं कर पाएगी।

आसक्ति के संदर्भ में आगम में मछली का उदाहरण दिया गया है।

मछली पकड़ने वाले, काँटे में आटे की गोली लगा देते हैं। मछली जैसे ही उसको खाने के लिए झपटती है उसका होंठ उसमें बिंध जाता है। वह उसी में लटकती रह जाती है और मछुआरे उसको पकड़ लेते हैं। उसकी दुर्दशा होती है।

जैसे मछली काँटे में फँसकर अपने जीवन को कष्ट में डालने वाली बन जाती है वैसे ही खाने-पीने के पदार्थों में आसक्त व्यक्ति उनमें फँसकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेता है।

हमें मनुष्य जन्म मिला है, तीर्थंकर देवों का धर्म मिला है, हमने उसका क्या लाभ उठाया। यदि हमसे कोई पूछ ले कि भाई! तुम मोक्ष की ओर कितना आगे बढ़े, मन में कितना संतोष व्याप्त हुआ, मन में कितनी शांति पैदा हुई, जीवन की ऊहापोह खत्म हुई या नहीं हुई तो हमारा जवाब क्या होगा? हमारा जवाब क्या होगा? अरे! बोलो तो सही।

सोच रहे होंगे कि बोलना खतरे से खाली नहीं है। क्या बोलें। मन जानते हुए भी अनजान बनकर सोया हुआ है। जगा हुआ भी सोया रहे, सोने का दिखावा करे उसको जगाना आसान नहीं होता। जगने वाले एक क्षण में जग जाते हैं। मेघ कुमार ने भगवान का एक व्याख्यान सुना और जागृत हो गया। एवंता कुमार ने भगवान महावीर के एक बार दर्शन किये थे, एक बार देशना सुनी थी और उसके भीतर ज्ञान प्रकट हो गया। उसके ज्ञान का स्विच ऑन हो गया।

हमारे तो सुनते-सुनते कान पक गए। उदाहरण के लिए कहते हैं कि मंदिर के कबूतर की तरह हो गए। मंदिर में कितने ही ढोल-नगाड़े बजाओ, वहाँ के कबूतर नहीं उड़ते। वे ढोल-नगाड़े की आवाज सुन-सुनकर अभ्यस्त हो गए। शायद हमारी भी वैसी ही दशा हो रही होगी। हमें सुनने का बड़ा शौक है। एक दिन म.सा. व्याख्यान नहीं दें तो लोग बोलेंगे, म.सा.! आज तो सूना-सूना लग रहा है। अरे भाई! तुमने सुनकर किया क्या!

आपने सुनने का सार क्या निकाला? पानी बहुत बरसा, किंतु खेत में पानी की एक भी बूँद नहीं पड़ी क्योंकि प्लास्टिक लगाई हुई थी। कितना भी पानी बरस जाए, पांडाल में नहीं आएगा क्योंकि बरसाती लगी हुई है। बरसाती

लगाने से पांडाल के अंदर पानी नहीं आएगा। सारा पानी बहकर निकल जाएगा। हम अपने मन में थोड़ी निवाण पैदा करें। निवाण बनी रहेगी तो पानी बचेगा, पानी इकट्ठा होगा। नहीं तो चट्टानों पर पड़ा हुआ पानी चट्टानों के सहारे फिसलकर नीचे आ जाएगा। जहाँ थोड़ा-सा गड्ढा होगा वहाँ पानी इकट्ठा हो जाएगा। यह हमने सुनने का सार निकाला कहा जा सकता है।

'ज्ञानस्य फलं विरतिः'

ज्ञानीजन कहते हैं कि ज्ञान का फल विरति भाव है, वैराग्य भाव है। आप डरो मत। वैराग्य का अर्थ यह नहीं कि दीक्षा ही लेना। पाप से, आस्रव से मन विरक्त हो जाना। अभी धर्म की आराधना ज्यादा हो रही है या पाप की?

(श्रोतागण बोले- पाप की आराधना ज्यादा हो रही है)

पर भव में आपका साथ पाप देगा या धर्म?

(श्रोतागण बोले- धर्म साथ देगा)

तो फिर जान-बूझकर आग में हाथ क्यों डालना। यह समझदारी की बात नहीं है। समझदारी तब कही जाएगी, जब भीतर विवेक प्रज्ञा, विवेक ख्याति जागृत हो जाएगी। किसको कहते हैं विवेक ख्याति? विवेक ख्याति किसे कहते हैं?

हेय-ज्ञेय का बोध होना चाहिए। यह बोध होना चाहिए कि कौन-सा पदार्थ ग्रहण करने योग्य है और कौन-सा ग्रहण करने योग्य नहीं है। यह भेद बुद्धि होने का नाम है विवेक ख्याति। विवेक प्रज्ञा जागृत होने पर वह विनिश्चय करेगी कि क्या हितकर है और क्या अहितकर है। पर्युषण तो निकल गए, किंतु सामने दूसरे पर्युषण आ रहे हैं। हमारी हित बुद्धि जगे। हिताहित का ज्ञान हो। पुण्य कथंचित् हित में आएगा। पाप कभी भी हित में नहीं आएगा। ज्यादा पाप उपार्जित करेंगे तो अहितकर होगा।

सुनंदा का चारित्र भी आप सुन रहे हैं।

'सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...'

बाहर के लोग आकर दो-चार दिन रुके और चले गए। उनके ध्यान में 'सुंदर हो संस्कार भविकजन' कहीं नहीं आए तो बात समझ में आती है किंतु जो लोग रोज गा रहे हैं उनके मुँह से लड़खड़ाती आवाज क्यों निकल रही है।

कल रात को दिमाग में एक बात आई कि उपस्थित की हाजिरी ली जाती है, अनुपस्थित की नहीं ली जाती। स्कूलों में रजिस्टर में हाजिरी ली जाती है। जो उपस्थित होता है वह यस सर बोलता है, किंतु यहाँ पर जो उपस्थित हैं उनकी हाजिरी लगाने की जरूरत नहीं है। जो अनुपस्थित हैं उनकी हाजिरी लेने की जरूरत है।

यहाँ बाहर के लोग ज्यादा हैं या नीमच के?

'पर पुद्गल की शोभा सारी'

परायी शोभा से क्या मिलेगा। इस पर विचार करते हुए भरत जी को तो केवलज्ञान हो गया और हम यह सोचते हैं कि उपस्थिति बहुत बढ़िया हो रही है। हमारा मन राजी हो रहा है? किससे राजी हो रहा है? नकली से राजी हो रहा है या असली से? आप कहेंगे, म.सा. आप हमें नकली बना रहे हैं। नकली नहीं तो आगंतुक तो हो ना! यह शोभा टिकने वाली नहीं है। यह शोभा रहने वाली नहीं। बहुधा यह देखा गया है कि विनती करते समय बढ़-चढ़कर भाव होते हैं कि म.सा. छत्तीसगढ़ में चौमासा करना है। आप चाहे जिस स्थान पर कर देना, पूरे छत्तीसगढ़ वाले लाभ लेंगे। पूरे छत्तीसगढ़ को तो छोड़िए, गाँव वाले भी लाभ ले लें तो बहुत है। गाँव की बात भी जाने दें, घर वाले भी लाभ लें तो बहुत है। लोग कहते हैं, म.सा.! जैनों-अजैनों, मंदिरमार्गियों, स्थानकवासियों को लाभ मिलेगा। यह बात यथार्थ में नहीं होती, दिखाने के लिए होती है।

मैं तो कई बार विनती करनेवालों से बोल देता हूँ कि आप लोग विनती कर रहे हैं आप लोग भी तैयार हो जाएं तो बहुत बड़ी बात है। विनती करने के लिए कितनी बसें आएंगी? होली चातुर्मास की विनती के लिए डेढ़ सौ, दो सौ, तीन सौ लोग आएंगे। चातुर्मास की विनती के लिए 1100 लोग आएंगे और वहाँ पर साधु-संतों का चातुर्मास होगा तो कितने लोग दिखेंगे? फिर भीड़ किस काम की। भीड़ से कल्याण होने वाला नहीं है। एक बार फिर से थोड़ा लय से बोलें।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
हटो आज ही निर्णय करना, बात उठेगी फिर से वरना,

चिक-चिक होवे बंद, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...
बहन जबरन रोके उसको, बड़प्पन का है नशा उसको,
लाठी जिसकी भैंस, भविकजन।। सुंदर हो संस्कार...

विजय अपनी बहन से कहा रहा है कि तुम हटो, मुझे जाने दो। मुझे मत रोको, आज निर्णय हो ही जाना चाहिए। अभी इसको मालूम पड़ जाएगा कि किसका कितना हक है।

सुनंदा ने बात कही थी कि सुरेश का भी घर पर हक है, उसको कौन निकाल सकता है। कौन हटा सकता है। विजय आवेश में आ झपट्टा मार रहा था कि उसकी बहन ने उसको रोक लिया। विजय कहता है, छोड़ दो मुझे। आज निर्णय हो जाना चाहिए। रोज की चिक-चिक नहीं होनी चाहिए। विजय को अपने बड़प्पन, अपने पैसे, अपने सौंदर्य और रूप-लावण्य का बड़ा घमंड था। उसे अपनी संपत्ति का गर्व था। वह सोचता था कि मेरा कौन क्या बिगाड़ेगा।

विजय कहता है कि आज तुम बीच में से हट जाओ। आज निर्णय कर देता हूँ कि किसका हक है और किसका नहीं। आज ही निर्णय हो जाएगा तो रोज-रोज की चिक-चिक खत्म हो जाएगी। एक मुहावरा है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' इस मुहावरा के पीछे एक कहानी है।

एक किसान भैंस लेकर जा रहा था। उसके सामने एक लुटेरा आ गया। उसने जोर से जमीन पर लाठी पटकते हुए कहा, भैंस को मेरे हवाले कर दो, नहीं तो तुम्हारे सिर पर लट्ठ पड़ेगा। किसान ने सोचा कि अब क्या करूँ, सामने बड़ी समस्या आ गई, किंतु बुद्धिमान कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेता है। किसान ने उसके सामने हाथ जोड़े और कहा, भाई साहब! आप कह रहे हो कि भैंस की रस्सी मुझे पकड़ा दो तो मैं यह भैंस आपके हवाले कर दूँगा, किंतु मेरे सामने बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी।

क्या समस्या खड़ी हो जाएगी?

किसान ने कहा कि मेरी पत्नी बड़ी चांडाल है। मैं खाली हाथ घर जाऊँगा तो वह मेरी हालत बिगाड़ देगी, इसलिए इसके बदले में मुझे कुछ मिल जाए तो ठीक रहेगा।

लुटेरे ने कहा कि मेरे पास लाठी के अलावा और कुछ भी नहीं है। किसान ने कहा, कृपा करके लाठी दे दो। लुटेरे ने भैंस पकड़ी और लाठी किसान को दे दी। अब किसान ने लाठी जमीन पर पटकते हुए कहा, खबरदार! भैंस को छोड़े बिना एक भी कदम आगे बढ़ाया तो तुम्हारे सिर पर लाठी पड़ेगी। कहा जाता है कि उसके बाद से कहावत चालू हो गई, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यानी जिसके हाथ में लाठी होगी उसकी भैंस होगी। जिसके पास शक्ति होगी, भैंस उसकी रहेगी।

अभी विजय समझ रहा है कि मेरे पास ताकत है, इसलिए जिसकी लाठी उसकी भैंस। विजय कह रहा है मैं जो चाहूँगा वही होगा। बहन उसको रोक रही है। अब विजय आगे क्या खेल खेलेगा और क्या करेगा यह तो समय के साथ ही सुन पाएंगे। हमें सुनकर क्या लाभ लेना चाहिए, यह बताओ? विजय का किरदार अदा करना चाहिए या सुनंदा से शिक्षा प्राप्त करनी है?

(श्रोतागण बोले- सुनंदा से शिक्षा लेनी है)

सुनंदा जैसी कर्तव्यनिष्ठा, सहनशीलता लानी है या विजय जैसा आक्रोश लाना है, जिससे घर में उधम मच जाए, हो-हल्ला मच जाए, त्राहिमाम् की हालत हो जाए। ऐसा काम न हो कि घर के निपटारे में दूसरों को बुलाना पड़े।

बंधुओ! हमें प्रेरणा लेनी है। सुनने का सार निकालें। थोड़ी जगह ऐसी बचा लें जिसमें सुना हुआ बच जाए। आपने सुना कि वह किसान कर रहा है कि मैं खाली हाथ घर जाऊँगा तो पत्नी मेरी हालत बिगाड़ देगी और आप यहाँ से खाली हाथ जाओगे तो फिर घर में क्या हालत होगी, कोई पता नहीं है। मेरे कहने से भले ही कुछ मत ले जाओ, किंतु अपने घरवालों के डर से तो कुछ ले जाओ ताकि घर में बखेड़ा खड़ा नहीं हो। सहिष्णुता-सहनशीलता लाने की कोशिश करें। सहनशीलता जितनी बढ़ेगी उतना ही मन शांत होगा, समाधि में आएगा। आसक्ति और तृष्णा में जितना दौड़ेंगे उतना ही अपने मन को कमजोर करनेवाले बनेंगे। सहनशीलता का मतलब है कि कोई कितनी ही हथौड़ियाँ लगा दें, वे हमारा बिगाड़ करने वाली नहीं हों। ऐसे सहनशील बनने का लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य-धन्य बनेंगे।

कई तपस्याएँ चल रही हैं। तपस्वियों से प्रेरणा लें। अपने आपको सुदृढ़ बनाएं, मजबूत बनाएं, सहनशील बनाएं। ऐसा करेंगे तो धन्य-धन्य बनेंगे।

इन तपस्याओं की अनुमोदना में, चातुर्मास काल में अठाई कौन-कौन करेंगे? अठाई से तपस्वियों की अनुमोदना कौन-कौन करेगा?

(31 लोगों ने अठाई के पच्चक्खाण किए)

अब चातुर्मास काल में एक तेला कौन-कौन करेगा?

(काफी लोग खड़े हुए)

यह हुई बात, ऐसी होती है हिम्मत।

सरिता जी की 70 की तपस्या है तो 70 लोग तो खड़े होने ही चाहिए। कई भाई-बहन खड़े होने लगे।

109 से अधिक लोगों ने तेले के पच्चक्खाण किए।

07 सितंबर, 2023

15

तप बड़ो रे संसार में

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

'धर्म सदा सुख त्राण' अर्थात् मनुष्य चाहता है कि मेरा सुख बना रहे। मेरा सुख विच्छिन्न नहीं हो, किंतु उसे सुख के स्वाद का ज्ञान नहीं है। सही सुख का ज्ञान नहीं होने से कई बार उसे लगता है कि वह बड़े सुख में है। यह उसी तरह है जैसे कोई व्यक्ति काँच के कंचे इकट्ठा कर सोचने लगे कि मैं बहुत बड़ा जौहरी हो गया। ऐसा सोचने वाला जब उसे बेचने जाएगा तो कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि काँच कभी मणि नहीं हो सकता। काँच, काँच ही रहेगा और मणि, मणि रहेगी।

मनुष्य जिस सुख की चाह कर रहा है, जिस सुख की कामना करता है वह काँच के कंचों के समान है। सच्चा सुख उत्तम रत्नों के समान है। सच्चे सुख को किसी बाहरी साधन की आवश्यकता नहीं होती। वह व्यक्ति के भीतर से ही प्रकट होता है। धर्म उस सुख की रक्षा करनेवाला होता है।

मधुर शब्द, सुंदर दृश्य, अच्छी सुगंध, अच्छे स्पर्श और अच्छे रस के अनुभव को लोग सुख मानते हैं, किंतु ये सुख नहीं हैं। कान से सुनाई देना बंद हो जाए तो मधुर शब्द सुन नहीं पाएंगे। आँखों की रोशनी मंद हो जाए तो सुंदर दृश्य नहीं देख पाएंगे। कोरोना की चपेट में आए कई लोगों को गंध का भी पूरा अहसास हो नहीं पा रहा है। उनको गंध-सुगंध का अनुभव भी नहीं हो पा रहा है। किसी को अधिक समय तक ज्वर रहता है, कोई टाइफाइड से ग्रस्त रहता है तो उसकी जीभ संवेदनहीन हो जाती है। उससे जो स्वाद आना चाहिए

वह नहीं आ पाता। स्पर्श की दशा भी ऐसी ही होती है। जब तक स्पर्शेंद्रिय काम करती है, तभी तक कोमल, खुरदरा, अनुकूल और प्रतिकूल की अनुभूति होती है। जिस दिन इंद्रियाँ शिथिल हो जाएंगी उस दिन न सरदी का ज्ञान होगा, न गरमी का।

एक किसान एक दुकान पर खड़ा था। उसके पाँवों में जूते या चप्पल नहीं थे। किसी ने सिगरेट पीकर फेंकी और उस पर उसका पैर पड़ गया। एक व्यक्ति कहता है, काका-काका आपके पैर के नीचे जलती हुई सिगरेट आ गई। वह कहता है, कौन से पैर के नीचे है। इसका मतलब हुआ कि उसके पाँव की चमड़ी की संवेदना मर चुकी थी, जिससे उसको यह ज्ञात ही नहीं हो पा रहा था कि पाँव के नीचे जलती हुई सिगरेट आ गई। किसी की इंद्रियाँ बहुत सक्रिय होती हैं। थोड़ा-सा स्पर्श लगते ही उसकी चेतना जागृत हो जाती है। किसी की इंद्रियाँ कम सक्रिय होती हैं। बल प्राण जितना सशक्त होता है इंद्रियाँ उतनी ही काम करती हैं। जब बल प्राण शिथिल हो जाएगा, तब वे उतना काम नहीं कर पाएंगी। इसलिए इंद्रियों के माध्यम से मिलने वाला सुख शाश्वत सुख नहीं है। वह सुख सदा रहने वाला नहीं है।

शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श की बात मैंने बताई। स्पर्श का आनंद लेने वालों को गरमी लगने पर ए.सी. या कूलर चाहिए। थोड़े-से सुख-साता के लिए न जाने कितने जीवों की घात हो जाती है। शरीर की शुद्धि के लिए नहाना एक बात है, किंतु फौवारे में बैठकर घंटों मजा लेते रहना, मौज मनाते रहना दूसरी बात है। नहाने के नाम पर मजा लेते समय श्वास बंद हो जाए तो बहुत संभव है कि मरकर अपकाय के जीव हो जाएं। मनुष्यों की तो बात ही क्या करें, देवलोक के देवों की भी यही गति शास्त्रकार बताते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि बावड़ियों में जल क्रीड़ा करते समय, बगीचों में भ्रमण करते समय देवों का मन जब रम जाता है उस समय यदि आयुष्य का बंध हो जाए तो देव मरकर अपकाय में वनस्पति काय में पैदा हो जाता है।

आसक्ति के कारण मनुष्य जीवन ही नहीं, देवता भी देवत्व तक गँवा देते हैं। मनुष्य जीवन तो हमने बहुत बार पाया है, किंतु तीर्थंकर देवों का धर्म सोने में सुहागा की बात को चरितार्थ करता है। जैसे सोने पर सुहागा लगा देने से

उसकी चमक प्रखर हो जाती है वैसे ही मनुष्य जन्म के साथ तीर्थंकर देवों का धर्म मिलना हमारे जीवन में रौनक लाने वाला है। पर ध्यान रहे कि रौनक वैसे ही नहीं आएगी। रौनक आएगी धर्म की आराधना करने से। धर्म की आराधना करने से पहले एक बात ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि जब तक पाँचों इंद्रियों के विषय में अनुरक्त रहेंगे, उसमें आसक्त रहेंगे तब तक धर्म रूपी गाड़ी मंजिल दिलाने वाली नहीं बन पाएगी। शरीर से धर्माराधना कर लेंगे, किंतु मन बाहर भागता रहेगा। मन से हुई धर्माराधना ही महत्त्वपूर्ण होगी।

बाहुबली जी ने पाँच सौ साधुओं की सेवा की थी। उनको बहुत मजबूत शरीर मिला। पूर्व जन्म में पाँच सौ साधुओं की सेवा मन से करने के परिणामस्वरूप भरत को चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ। मेरी बात ध्यान में लेना कि कोई भी क्रिया खाली नहीं जाती है। हर क्रिया लाभ देने वाली होती है, परिणाम देने वाली होती है। हलवे में कितनी मिठास होनी चाहिए यह अपनी मरजी पर निर्भर है, पर यह स्पष्ट है कि जितनी शक्कर डाली जाएगी, उतनी ही मिठास होगी। शक्कर के चार दाने डाल देने से हलवे में मिठास नहीं आ पाएगी। उसी तरह क्रिया के साथ मन और भाव के जुड़ने एवं रसायन आने के आधार पर पुण्य का संचय होता है। उसी के आधार पर कर्मों की निर्जरा होती है।

आपने जीर्ण सेठ की कहानी सुनी होगी। उसने दान देने की भावना भाई, किंतु दान देने का सौभाग्य नहीं मिला। कहानी बताती है कि भगवान महावीर से पूछा गया कि भगवन्! जीर्ण सेठ की भावना का उसे क्या लाभ हुआ? भगवान ने कहा कि उसने इतने कर्मों की निर्जरा कर ली थी कि एक मुहूर्त भावना और चलती तो उसको केवलज्ञान हो जाता। उसी के आधार पर हम बोलते हैं–

भावे भावना भाविए, भावे दीजे दान।
भावे धर्म आराधिए, भावे केवल ज्ञान।।

भावना का बहुत महत्त्व है। भावना से रस पैदा होता है। रस जितना गहरा पैदा होगा कर्मों की निर्जरा उतनी ही महान हो पाएगी। आप लोग प्राय: साधुओं के दर्शन करते हैं, किंतु सबके कर्मों की निर्जरा एकसमान हो कोई

जरूरी नहीं है। किसी के भाव तीव्र हो जाते हैं और वह दर्शन करके उनमें लीन हो जाता है। समझ लो कि वह अपनी-सुध-बुध खो देता है। ऐसा दर्शन कर्मों की निर्जरा कराएगा। सामान्य दर्शन से कुछ नहीं होगा। 108 बार तिक्खुत्तो भी कर लोगे तो कुछ नहीं होगा। कभी-कभी संत या सतियाँ जी 36 बार, 51 बार, 108 बार वंदना करने के लिए कहते हैं, किंतु ज्ञानीजन कहते हैं कि एक नमस्कार भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। '**एक्को वि नमोक्कारो...**' अर्थात् भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक किसी एक भी तीर्थंकर को किया गया नमस्कार सारे पापों का नाश करने वाला बनेगा। वैसा नमस्कार कब होगा?

मगध सम्राट ने सभी साधुओं को वंदना की। भगवान से पूछा गया कि वंदना का क्या लाभ हुआ तो भगवान ने बताया कि छह नारकीय के बंधन टूट गए। मगध सम्राट ने कहा, भगवन्! एक बार और कर लेता हूँ।

पर अब क्या होगा?

'रायां रा भाव राते ही गया।' वह वंदना, वह लाभ देने वाली नहीं होगी, क्योंकि उसमें स्वार्थ घुस गया। शुद्ध भाव नहीं रहा। भावों में मिश्रण हो गया। भावों को शुद्ध रखना बहुत कठिन काम है क्योंकि उसमें कहीं-न-कहीं लाग-लपेट जुड़ जाता है।

तपस्याओं का क्रम अनवरत चल रहा है। आपको मालूम पड़ ही गया कि श्री गगन मुनि जी म.सा. का आज मासखमण संपन्न हो रहा है। सेवा करते हुए, गोचरी लाते हुए, स्वाध्याय, प्रतिलेखन करते हुए आज दूसरा मासखमण संपन्न होने जा रहा है। तपस्या वही सुखदायी होती है जो दूसरों पर आधारित न हो। अपने आत्मबल से, अपने शरीर बल से, सहज रूप में जो तपस्या हो वही लाभदायी होती है। परिणाम विशुद्ध बने रहेंगे। परिणाम यदि शुद्ध नहीं रहेंगे तो लंबी तपस्या भी प्रयोजन सिद्ध करने वाली नहीं बनेगी।

श्री पारस जी रंगवाला के सुपुत्र भाई चर्चिल जी रंगवाला की भी आज 31 की तपस्या है। रंगवाला परिवार धर्मनिष्ठ है, श्रद्धानिष्ठ है। कल मैंने कहा कि भाई अशोक जी की तरह तैयार हो जाओ। उन्होंने कहा, म.सा.! मेरी भी भावना है। बच्चे बड़े हो गए हैं, वे व्यापार समझ लेंगे तो फिर मैं समाज सेवा

के लिए तैयार हो जाऊँगा। बच्चे कइयों के तैयार हो जाते होंगे, किंतु आदमी वहाँ से हटना नहीं चाहता। वह सोचता है कि वे अभी बच्चे हैं। मनोभाव होता है तो आगे रास्ता मिलता है। और भी कई लोगों की तपस्या चल रही है। 26 की तपस्या में पाँच-छह नाम होंगे। उनमें एक नाम है केसुंदा की सुरभि जी गांधी का। केसुंदा का यह पाँचवाँ मासखमण संपन्न होने की तैयारी चल रही है। केसुंदा वाले पड़ोसी धर्म का निर्वाह कर रहे हैं।

आज के समय में पड़ोसियों में बड़ी दूरी है। वैसे तो आप जानते होंगे कि कैसी दूरी है पर एक उदाहरण से समझ सकते हैं। एक व्यक्ति खड़ा था। उसके सामने एक व्यक्ति आया और कहा कि मैंने आपको कहीं देखा है। फिर कहा, फेसबुक पर आपको देखा है। उसने पहले वाले व्यक्ति से पूछा कि आपका नाम क्या है, आप क्या काम करते हैं और कहाँ रहते हैं? पहले व्यक्ति ने कहा, मेरा नाम यशवंत भाई है। मेरा काम सोने-चाँदी का है और मैं आपके पड़ोस वाले मकान में रहता हूँ। फेसबुक पर आदमी को देख लिया, किंतु अपने पड़ोस में रहते हुए नहीं देख सका।

(श्रोतागण हँसने लगे)

आप हँस रहे है। हँसने की बात नहीं है। यह हमारे समाज पर बड़ा मर्मकारी प्रहार है। लोग फेसबुक और वॉट्सएप पर बहुत दौड़ते हैं। उस पर चिंता व्यक्त करते हैं, पर घर में, परिवार में, पड़ोस में क्या हो रहा है उसकी चिंता नहीं है।

महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की 27 की तपस्या है।

एक तेले की जरूरत है। कल या परसों 108 या 109 तेलों की बात चली। पर 109 तेले मिलकर भी एक मासखमण की बराबरी नहीं कर सकते। दस तेलों की तपस्या तीस होगी, किंतु मासखमण से जो लाभ होगा, उससे कर्मों की जो निर्जरा होगी वह दस तेलों से नहीं होगी।

सरिता जी मुणोत की 71 की तपस्या है। अब इनका मन भी किनारे लग रहा है। मेरे कानों में ऐसे शब्द आए हैं कि भगवान महावीर की 72 की उम्र रही है, इसलिए 72 की तपस्या हो जाए। नवीन जी की माता जी, शांता बाई जी कांठेड़ की आज 26 की तपस्या है। उन्होंने मासखमण के पच्चक्खाण कर

लिए हैं। हमारे यहाँ बुकिंग चालू है। एक की तपस्या के दिन भी मासखमण की बुकिंग करा सकते हैं। लोग गाड़ी का, प्लेन का टिकट दो-तीन महीने पहले बुक कराते थे, किंतु हमारे यहाँ हाथों-हाथ बुकिंग हो रही है कि अमुक तारीख से तेला पचखा और अमुक तारीख से नौ पचखे।

रायपुर चातुर्मास में भंडारी जी को लगा कि मुझे नौ की लड़ी चलानी है। गाँव वालों के अलावा दूसरे दर्शनार्थी आते तो उनको भी पकड़ लेते और कहते कि इतनी तारीख से नौ का पच्चक्खाण करा दो। लड़ी, बिना लड़ी की बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है मनोभाव। मनोभाव पवित्र होना चाहिए और तपस्या में लीन रहना चाहिए। मन उछाल खाए तो उसकी परवाह नहीं करना। पारणा करने की बात मन में आ सकती है। दूसरी बात भी आ सकती है। मन में जो आए उसकी सफाई करने का प्रयत्न करेंगे और धीरे-धीरे अभ्यास करते जाएंगे तो खाने की इच्छा ही नहीं होगी। एक बार सरिता जी की 54 की तपस्या के पारणे की बात चली। उन्होंने कहा कि म.सा.! पारणे की इच्छा ही नहीं हो रही है।

महासती श्री मल्लिकाश्री जी म.सा. ने कहा कि भोजन देखते ही मन ऊबता है। खाना खाने की इच्छा नहीं होती। स्वास्थ्य अनुकूल नहीं होने के कारण पारणा करा दिया गया, किंतु उसके लिए मन से तैयार नहीं थीं। एक बार उन्होंने कहा कि लंबी तपस्या करके संथारा कर लूँ। क्या विचार बना उनका? उनका विचार बना कि लंबी तपस्या करके संथारा स्वीकार कर लूँ। आहार में रुचि नहीं होती। आहार देखते ही मन ऊबने लगता है, मैं कैसे पारणा करूंगी। किंतु शरीर तो शरीर ही है। आखिर उसको भी खुराक देनी पड़ती है। उनसे प्रेरणा लें कि हमारे भीतर मनोभाव कैसे जगें और तीर्थंकर देवों के धर्म की सही आराधना कैसे हो, उस पर विचार करें।

मनुष्य जीवन सोना है। उसका आभूषण बनाकर पहनना जिनशासन का धर्म हो जाएगा। पहनकर उसका आनंद लेने से जो रसायन बनेगा वह महत्त्वपूर्ण होगा।

हमारे सामने चार चीजें हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। हमारे दर्शन शुद्ध हों। ज्ञान की आराधना करें। तप तथा नियम प्रतिज्ञा से अपनी आत्मा को

भावित करें और जितना बन सके तप करने का लक्ष्य रखें। अनशन तप, उनोदरी तप, स्वाध्याय तप आदि बहुत सारे तप हैं। कुल बारह प्रकार के तप बताए हैं। जीवन प्रतिदिन तप में घटित होना चाहिए। अनशन तप नहीं कर सकते तो उनोदरी तप कर सकते हैं। खाने के पदार्थों को सीमित कर सकते हैं। रस का त्याग कर सकते हैं। किस-किस रस को सीमित कर सकते हैं? लोग मिठाई का त्याग करते हैं। मिठाई का त्याग कई दिनों तक हो जाएगा, किंतु नमक का त्याग कितने दिनों तक चलेगा? बारह महीनों तक महीने में एक दिन नमक का प्रयोग नहीं करना। कौन-कौन तैयार है? खड़े हो जाओ।

घी खाने की, मिठाई खाने की छूट है। छोड़ना है तो केवल नमक। इसमें कोई गली मत निकालना कि सादा नमक नहीं तो काला नमक उपयोग में ले लेंगे। काला नहीं तो लाल नमक उपयोग में ले लेंगे। किसी प्रकार के नमक का उपयोग नहीं करना। लोग विचार कर रहे होंगे कि घर में कोई क्या बोलेगा। एक दिन के त्याग में कौन-क्या बोलेगा। घर में नमक बच जाएगा, और क्या बोलेगा। इससे पृथ्वीकाय जीवन को अभयदान मिलेगा।

'सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...'

बस! अपने जीवन को सुंदर बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

08 सितंबर, 2023

16

अवसर अनमोलो

धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगशुं, भंग म पड़शो हो प्रीत, जिनेश्वर,
बीजो मन मंदिर आणुं नाहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

दो के विवाद में एक हारता है। हमारा अनुभव है कि लड़ाई करनेवाले दो लोगों में एक जीतेगा और एक हारेगा। हारने वाला तो हार ही गया, जीतने वाले की जीत में संशय है। जीतने वाले के मन में भी विषाद होगा। महाभारत युद्ध में कौरव पक्ष हार गया। वंश खत्म हो गया। युधिष्ठिर और अर्जुन के मन में विषाद हुआ। वे सोचने लगे कि इस विजय से हमने क्या पाया है। लाखों लोगों की मौत के बाद मिली जीत से हमें क्या फायदा हुआ है।

विवाद में यही होता है। विवाद में कोई भी जीतता नहीं है। विवाद करनेवाला हारता ही है। किसी ने भले ही किसी पर विजय पर प्राप्त कर ली, किंतु अपने मन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाया, इसलिए उसको विजयी नहीं कहा जा सकता। धर्म आराधन सच्ची विजय दिलाने वाला है।

'दुख जाएगा हार, मोह जाएगा हार'

विमलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए बहुत सुंदर बात कही गई है।

'दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख संपद शुं भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कोण गंजे नर खेट?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्या वांछित काज।। विमल...

कहा गया कि विमलनाथ भगवान के दर्शन मात्र से मेरा दुख और दुर्भाग्य दूर हो गया। आप विचार कर सकते हैं कि जब दर्शन मात्र से दुख और

दुर्भाग्य दूर हो जाता है तब उस राह पर आगे बढ़ने पर क्या लाभ होगा।

'सुख संपद शुं भेंट'

दर्शन से सुख और संपत्ति की प्राप्ति होगी। यहाँ एक प्रश्न खड़ा होगा कि संपत्ति और लाभ की बात? एक तरफ परिग्रह हटाने की बात कही जाती है और दूसरी तरफ संपत्ति प्राप्त होने की बात कही जाए तो प्रश्न खड़ा होगा। हमने संपत्ति के रूप में धन-वैभव को ही माना है। ग्रंथकार ने संपत्ति के छह अर्थ बताए हैं; सम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान। सम यानी जिससे भीतर समभाव बढ़े। इंद्रियों का दमन करने का सामर्थ्य जागृत हो, सहनशीलता बढ़े। आवश्यक गुणों में एक बहुत आवश्यक गुण है सहिष्णुता, सहनशीलता। इसी का दूसरा नाम तितिक्षा है। आज के समय में सहनशीलता की बहुत कमी होती जा रही है। सहनशीलता आ जाए तो उसके आधार पर बहुत सारे दूसरे गुण पैदा हो जाएंगे।

बीज बोएंगे तो फसल मिलेगी किंतु धरती ही नहीं होगी तो बीज कहाँ बोए जाएंगे! जब बीज ही नहीं बोए जाएंगे तो फसल कहाँ से मिलेगी! सहनशीलता रूपी पृथ्वी होगी तो सद्गुणों की फसल मिलेगी। मुनि के लिए भगवान ने कहा है-

'पुढवीसमए मुणी हवेज्जा'

अर्थात् मुनि को पृथ्वी के समान सहनशील होना चाहिए। जो वैसी सहनशीलता प्राप्त करेगा, निश्चित रूप से वह दुखी नहीं होगा। 'दुख जाएगा हार' यानी दुख उससे पराजित हो जाएगा। दुख उसके पास ठहर नहीं पाएगा। सहनशीलता आत्म संपत्ति है। सारी विपदाओं को दूर करने का सामर्थ्य सहनशीलता में है।

'जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान'

एकमात्र संतोष धन आ जाने से व्यक्ति सुखी हो जाएगा। जिसके पास संतोष धन है, उसके पास पैसे, गाड़ी, घोड़े, धन, वैभव नहीं होने पर भी वह सुखी है। वह दुखी नहीं हो सकता। धन-वैभव, मनुष्य के मन में तृष्णा पैदा करते हैं, अशांति पैदा करते हैं। यदि कोई अपने मन को अशांत नहीं होने देगा, तृष्णा में झुलसने नहीं देगा तो धन-वैभव भी उसको पराजित करनेवाले नहीं

बनेंगे। सहनशीलता ऐसा वैभव है जिसके रहने पर दुख नजदीक ही नहीं आ पाएगा।

दुख का कारण क्या है?

दुख का कारण है तमन्ना। तमन्नाएं हमें दुखी बनाती हैं। तमन्ना अनेक प्रकार की होती है। किसी को धन प्राप्ति की तमन्ना होती है तो किसी को संतान प्राप्ति की। अनेक लोगों को पद-प्रतिष्ठा की भी तमन्ना होती है। तमन्ना मनुष्य के दिल में विषाद पैदा करती है। दुख पैदा करती है। हमारा लक्ष्य कर्तव्य परायणता का होना चाहिए। कर्तव्य पर दृष्टि रहेगी तो सहनशीलता बढ़ेगी, क्योंकि कठिनाइयों से जूझने की क्षमता कर्तव्यनिष्ठा में होती है। चाहे कैसी भी कठिनाई क्यों न हो, व्यक्ति उससे विमुख नहीं होगा। सम, दम, तितिक्षा के बाद संपत्ति का चौथा- अर्थ उपरति बताया गया है। अर्थात् विषय-वासनाओं से उपरत हो जाना। जिससे आत्म अहित हो उससे अपने आपको किनारे कर लेना, उपरति है।

सन् 1986 में पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. का जलगाँव में चातुर्मास था। वहाँ जलगाँव की व्याख्या करते गुरुदेव ने बहुत सुंदर बात कही थी कि जल बहता रहता है। बहते हुए जल के बीच में कोई चट्टान आ जाने पर वह उससे झगड़ता नहीं। उसमें लड़ाई-झगड़ा नहीं करता। बगल से निकल जाता है। वह टकराता नहीं, उससे उपरत हो जाता है। धीरे-धीरे वह चट्टान को काट देता है और अपना रास्ता सुगम कर लेता है। टकराना समाधान नहीं है, उपरति समाधान है।

अभी बताए गए संपत्ति के छह अर्थ तब प्राप्त होते हैं जब विमलनाथ भगवान के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। समाधान मन को शांति देने वाला होता है, मन को समाधि देने वाला होता है। शंका आदमी के चित्त में विभ्रम पैदा करती है। नीतिकारों ने कहा है 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशय में जीने वाली आत्मा अपना विनाश करने वाली होती है। विनाश का मतलब है, अपने आत्मगुणों का हनन करना। आत्मगुणों का हनन नहीं हो, इसलिए कोई संशय, डाउट, शंका नहीं रहनी चाहिए।

तीर्थंकर देवों के मार्ग पर चलने के लिए पहली शर्त है निश्शंक होना।

शंका रहित होकर चलना। संशय रहित होकर चलना। जिज्ञासा होना ज्ञान प्राप्ति का द्योतक है। जिज्ञासा आगे बढ़ाने वाली होती हैं। संशय डाँवाडोल करनेवाला होता है। हमें इस भेद को जान लेने की आवश्यकता है। मन में हुई शंका का जिज्ञासा के रूप में समाधान लेने का भाव बनना ज्ञान वृद्धि का हेतु है। समाधान लेने के बजाय मन ही मन डाउट होते रहना, डाँवाडोल होते रहना शंका है। घड़ी का पेंडुलम हर सेकेंड हिलता रहता है। जैसे घड़ी का पेंडुलम इधर-उधर घूमता रहता है वैसे ही शंकाशील व्यक्ति का मन डोलता रहता है।

'उभयकोटिसंस्पर्शि ज्ञानं संशयः'

दोनों कोटियों का स्पर्श करानेवाला ज्ञान संशय कहलाता है। एक बार इधर एक बार उधर घूमना डाँवाडोल अवस्था का सूचक है।

पेंडुलम कब तक चलेगा? आप कहेंगे कि जब तक चाबी भरी हुई है, तब तक चलेगा। मेरी भाषा में या आध्यात्मिक भाषा में कहें तो जैसे पेंडुलम हिलता रहता है, वैसे ही संशयशील व्यक्ति का मन झूलता रहता है। उसका मन स्थिर नहीं हो पाता। मन की स्थिरता के लिए, मन की समाधि के लिए समाधान बहुत आवश्यक है। धर्माराधना करने से मन समाहित हो जाता है, समाधान में आ जाता है। इसलिए निश्चित है कि दुख जाएगा हार। वहाँ दुख जीत नहीं सकेगा। दुख की वहाँ कुछ चलेगी नहीं।

'दुख दोहग दूरे टल्यां रे, सुख संपदशुं भेट'

कोई यह कह सकता है कि यह खाली कहने की बात है कि दुख और दुर्भाग्य दोनों ही दूर हो जाते हैं किंतु सही में दुख दूर होगा कैसे? दुख दूर होने का ही उपाय बताया गया है कि दुख दूर होगा विमलनाथ भगवान के चरणों में अपने आपको नमा देने से। विमलनाथ भगवान के मार्ग पर तन्मय होने से। उसमें आत्मलीन होने से। ऐसा होने से ईश्वरीय शक्ति मन में प्रवेश करने लगेगी। उस शक्ति का प्रवेश होने से किसी भी प्रसंग पर मन दुखी नहीं होगा। दुख के क्षण आएंगे, किंतु मन दुख का मुकाबला करने में समर्थ हो जाएगा।

हरिश्चंद्र राजा चांडाल के यहाँ बिक गए, किंतु दुखी नहीं हुए। सत्य की बदौलत उनमें दुख झेलने की क्षमता आ गई। सामर्थ्य आ गया।

कहते हैं कि सिंहनी का दूध सोने के थाल में ही ग्रहण किया जाता है।

स्वर्ण पात्र में ग्रहण किया जाता है। यदि दूसरी धातु के बरतन में वह दूध डाल दिया जाए तो बरतन फट जाएगा। जैसे स्वर्ण पात्र सिंहनी का दूध झेलने में समर्थ होता है, वैसे ही सत्य से स्वर्ण पात्र बना मन अनेकानेक कठिनाइयों को सहने में समर्थ होता है। उसमें कठिनाइयों को सहने का सामर्थ्य पैदा हो जाता है। उसके सामने कितनी भी विपदाएं आ जाएं वह दुखी नहीं होता।

युवा शिविर की चर्चा चली। सवाल आया कि कौन है युवा? किसको कहा जाए युवा? युवा शब्द का व्यत्यय करो। युवा शब्द को उलटा करेंगे तो वायु होगा। वायु के समान चलनेवाला युवा होता है। जिसका पुरुषार्थ सतत जागृत होता है उसे युवा कहा गया है। युवा किसी के रोकने से नहीं रुकता। आपके यहाँ युवा उम्र की सीमा से बँधा हुआ है। 50-60 वर्ष की उम्र वाला भी युवा हो सकता है, बशर्ते कि वह वायु के समान हो, अप्रतिहत विहारी हो। वायु असंगृहीत होती है, अनियंत्रित होती है तो विप्लव मचा देती है। वायु का अनियंत्रित रूप तूफान है। नियंत्रित वायु हजारों टन माल को इधर से उधर पहुँचाने में समर्थ हो जाती है। इसलिए युवा का अपने पर नियंत्रण होना बहुत आवश्यक है। अनियंत्रित क्रियाशीलता विपरीत दिशा में ले जाने वाली हो सकती है जबकि नियंत्रित पुरुषार्थ सही दिशा की ओर ले जाने वाला होगा। वह भटकाने वाला नहीं होगा।

'हम दिशा बोध लें खास, अवसर अनमोलो'

इस पंक्ति को लिखें।

(श्रोताओं ने लिखा)

अब उसे बोलें।

(श्रोतागण बोले)

हम दिशा बोध लें खास, अवसर अनमोलो।
दृढ़ मन से हो प्रयास, अवसर अनमोलो।।
सुख में दुख में सम रह पाएं, हर्ष निराशा नहीं मन छाए,
रहे सदा उल्लास, अवसर अनमोलो...
हम दिशा बोध लें खास, अवसर अनमोलो...

इसमें कौन-सी बात बताई गई है? अवसर अनमोलो का अर्थ क्या

होता है? जो अवसर मिला है उसका कोई मूल्य नहीं है। वह अनमोल है। कोई पूछ ले कि कोहिनूर हीरे की कीमत क्या है? कितने का भी हो, उसे तराजू पर कैसे तौला जाएगा?

पंजाब के राजा रणजीत सिंह जी के पास कोहिनूर हीरा था। एक सज्जन व्यक्ति ने उनसे पूछा कि राजन! कोहिनूर हीरे की कीमत क्या है? उन्होंने जवाब दिया, इसकी कीमत है सात जूता। उसका मतलब था कि ताकत से भले ही कोई उसे ले सकता है, किंतु पैसे के बल पर कोहिनूर हीरा खरीदना चाहे तो नहीं खरीद सकता। अडानी-अंबानी के पैसे काम नहीं आएंगे। जिसके पास सात जूतों की ताकत होगी वह उसे ले जा सकता है। कल मैंने कहा था जिसकी लाठी उसकी भैंस।

यह जीवन अनमोल है। अवसर भी अनमोल है। जो अनमोल अवसर को सार्थक करेगा उसके लिए अनमोल है, नहीं तो कोई मूल्य नहीं है। हर क्षण बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। उस क्षण की पहचान कर उसे सार्थक करने की दिशा में गतिशील हो जाएं। सच्चे मन से प्रयास कर अवसर को साध सकते हैं। समय बड़ा बलवान होता है।

इसका उत्तर कौन देगा कि समय बलवान क्यों होता है?

समय किसी के बाँधने से नहीं बँधता। किसी व्यक्ति को, किसी सामान को बाँधा जा सकता है, किंतु समय को बाँधकर रखा नहीं जा सकता। जो समय का उपयोग कर लेता है वह उसे सार्थक कर लेता है। जो सोया रह जाता है उसके हाथ से समय निकल जाता है। उसके हाथ में कुछ भी नहीं पाता।

एक सर्कस कंपनी में तीन सिंह थे। तीनों को कई तरह की शिक्षा दी गई। सिंहों को बिना शिकार किए मांस मिलने लगा। दो-तीन साल तक वैसा चलता रहा। एक बार मौका पाकर तीनों सिंह वहाँ से निकल गए। तीनों बाहर तो निकल गए, किंतु उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि करें क्या। तभी तीन कुत्ते उनके पीछे पड़ गए। चूँकि सिंह अपना पुरुषार्थ खो चुके थे, अपना सामर्थ्य भूल चुके थे, इसलिए कुत्तों ने उनको फाड़ा और खा लिया। क्या कोई इस बात पर विश्वास करेगा कि सिंह को कुत्ते फाड़ के खा जाएं? नहीं करेगा किंतु ऐसा हो जाता है।

जैसे सर्कस कंपनी में रहते हुए तीनों सिंहों की ग्रंथि निष्क्रिय हो गई, वे अपने शौर्य को खो बैठे वैसे ही पद-प्रतिष्ठा, तमन्ना हमारे पुरुषार्थ को, हमारी शक्ति को, हमारे शौर्य को छिन्न-भिन्न करनेवाले हैं। हमारी सक्रियता भी निराशा की ग्रंथि में परिणत हो जाएगी। उसी के कारण व्यक्ति सोचता है कि मुझमें इतनी ताकत कहाँ है जो मैं यह कर सकूँ।

व्यक्ति के भीतर ताकत है। उसके भीतर शौर्य है। सामर्थ्य है, किंतु उसका बोध नहीं होने से निराशा में झूलता रहता है।

लोग कहते हैं कि बेरोजगारी बहुत बढ़ गई है। कल भाई सुभाष जी बता रहे थे कि आशुलिपिक के लिए 258 पद हैं और 30 हजार लोगों ने फॉर्म भरे हैं। 30 हजार लोगों ने फॉर्म भरे, किंतु निकलेंगे कितने लोग? 30 हजार में से 258 जनों को काम मिलेगा, रोजगार मिलेगा। यह बेरोजगारी क्यों है? क्योंकि हम सत्ता से शादी करना चाहते हैं। सत्ता का जंवाई बनने का सोच रहे होते हैं। सत्ता के जंवाई बन गए तो बैठे-बैठे खाते रहेंगे। लोगों के पास काम नहीं है क्या? दुनिया में कोई काम नहीं है क्या? व्यक्ति काम करके अपना पेट भर सकता है या नहीं?

एक व्यंग्य आया था अखबारों में कि लखनऊ में जब से यूनिवर्सिटी चालू हुई तब से सड़कें साफ हो गईं। कचरा रहता ही नहीं। आप यह मत सोचना कि यह मोदी जी के स्वच्छ भारत अभियान का चमत्कार है। मोदी जी तो बाद में आए, लखनऊ विश्वविद्यालय तो पहले ही हो गया फिर सड़कों की सफाई कैसे हो गई।

कैसे हो गई सड़कों की सफाई?

जॉब के लिए सड़क पर चलने वाले युवाओं की लंबी पैंट से सफाई हो गई। सड़कें क्लीन होती रहीं। लोग चक्कर लगाते रहते हैं कि सरकारी जॉब मिल जाए। जॉब के लिए इतना घूमने से बढ़िया है अपने हाथों से मेहनत करो, काम करो। अपने हाथों से काम करोगे तो सफलता मिलेगी या नहीं मिलेगी? सफलता मिलेगी, किंतु चाहते हैं कि कैसे ही करके जॉब मिल जानी चाहिए। बेरोजगारों पर एक करारा चाँटा लगाया गया है एक कहानी के माध्यम से।

कहानी के अनुसार बी.ए. तक पढ़ा-लिखा विद्यार्थी जॉब ढूँढ रहा

था। चिड़ियाघर की वैकेंसी निकली थी। विद्यार्थी वहाँ पहुँचकर बड़े विनय भाव से अफसर से कहने लगा कि सर! कैसे ही करके मुझे जॉब मिल जाए। इंटरव्यू लेने वाले को मन में हँसी आ रही थी कि पढ़ा-लिखा आदमी है किंतु इसका अपना कोई मोरल ही नहीं है। उसने कहा, देखो! हमारे यहाँ बहुत जटिल काम करना होगा। विद्यार्थी ने कहा, जो भी होगा, मैं करने के लिए तैयार हूँ। अफसर ने कहा, देखो! एक बार सोच लो। विद्यार्थी ने कहा, सर! मैं अच्छी तरह से सोच-विचार करके आया हूँ। उसने कहा, देखो! हमारे यहाँ पर भालू मर चुका है, उसकी खाल पहनकर तुम्हें आठ घंटे पिंजरे में चक्कर लगाने पड़ेंगे। उसने कहा, सर! मुझे मंजूर है। उसकी जॉब लग गई।

भालू की खाल पहनकर वह पिंजरे में चक्कर लगाने लगा। उसी के पास पिंजरे में एक सिंह था। एक दिन बीच का दरवाजा खुला रह गया और सिंह ने धक्का लगाया तो दरवाजा खुल गया। भालू की घिग्घी बँध गई कि अब क्या होगा। भालू सोचने लगा कि अब बचने वाला नहीं हूँ, आज तो गया। सिंह ने अपना पंजा उठाकर तथाकथित भालू के कंधे पर रखा और बोला, दोस्त! घबराओ मत, मैं भी एम.ए. तक पढ़ा हूँ। एम.ए. तक पढ़ने वाला सिंह बन गया और बी.ए. तक पढ़ने वाला भालू बन गया।

इसका मतलब क्या हुआ?

आज की पढ़ाई भालू, सिंह, चीता बनाती है। पशु बनाती है। अपना शौर्य जगाने की ताकत नहीं देती। एक पुरानी बात है- अणपढिया घोड़े चढ़े, भणिया मांगे भीख। पुराने लोग कहते हैं कि बिना पढ़े लोग कमाकर खा रहे हैं और पढ़े-लिखे लोग कटोरा लेकर दर-दर भीख माँग रहे हैं।

साथियो! अपनी शक्ति का विचार करें। सुख हो या दुख, सम रहना चाहिए। सुख-दुख में, हर्ष या विषाद नजदीक नहीं आना चाहिए। भीतर का शौर्य जगना चाहिए। अपना शौर्य जगाने की दिशा में लक्ष्य होना चाहिए।

तपस्या का क्रम निरंतर जारी है। महासती श्री स्तुतिश्री जी म.सा. की आज 28, महासती श्री निर्ग्रंथश्री जी म.सा. की 25, सरिता जी मुणोत की आज 72 की तपस्या है। उन्होंने एक दिन कहा था कि छह की तपस्या में पारणा करने का मन हो गया था और 72 हो गए।

सुमित जी खींचा की आज 35 की तपस्या है। ये श्री सत्य कुमार जी और चंद्रकला जी खींचा के सुपुत्र हैं। इनका विचार आगे बढ़ने का है। राजेश जी मोगरा आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रहे हैं। चर्चिल जी की कल 31 की तपस्या थी, आज पारणे की संभावना बताई जा रही है। रिंकल जी गांग की आज 29 की तपस्या है। कविता जी गांग, दीपा जी कच्छारा और अदिति जी नागौरी की आज 27 की तपस्या है। अदिति जी 15 के पारणा करने के लिए तैयार हो गई थी और आज 27 की तपस्या हो गई। जब 12 बढ़ गईं तो 15 बढ़ने में क्या देरी लगेगी। सुरभि जी गांधी की भी आज 27 की तपस्या है। सुशीला जी कांठेड़ व शांति बाई जी कांठेड़ की 27-27 की तपस्या है। सपना जी नलवाया की 22 की तपस्या है।

तपस्वी आत्माएं अपना-अपना जोर लगा रही हैं। हम भी अपना प्रयत्न करें।

(श्रोतागण हर्ष-हर्ष बोलने लगे)

खाली हर्ष-हर्ष बोलने से काम नहीं चलेगा।

हर्ष-हर्ष कौन-कौन बोल रहे थे, खड़े हो जाओ?

(कुछ श्रोतागण खड़े हुए)

बस! इतने लोगों ने ही बोला क्या? झूठ मत बोलना, झूठ का दोष लग जाएगा। महेश जी! आप नहीं बोले क्या? खाली दुनिया को बुलवाने का ही काम करते हो। चातुर्मास काल तक कम-से-कम दस एकासने करने हैं। जो करना चाहे हाथ जोड़ ले और जो नहीं कर सकता है वह अपना हाथ ऊपर कर ले कि मैं नहीं कर सकता। एकासना करोगे या उपवास?

(श्रोतागण बोले- एकासन करेंगे)

(लोगों ने एकासन का पच्चक्खाण लिया)

आप लोग हर्ष-हर्ष बोले तो अनुमोदना का लाभ भी तो मिलना चाहिए! खाली लिफाफे से कैसे काम चलेगा। अब आगे से बोलेंगे तो ध्यान से बोलेंगे। गये थे नमाज पढ़ने और रोजा गले आ गया। हम प्रेरणा लें और अपने आपको आगे बढ़ाएं। इतना ही कहते हुए विराम ले लेता हूँ।

09 सितंबर, 2023